THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180232

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.41 M49K Accession No. G.H. 3176

Author मेहेर, गंगाधर

Title कवि-श्री माला: उड़िया १९४२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* उड़िया *

कवि :

गंगाधर मेहेर

सम्पादक

प्रह्लाद प्रधान

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट

मन्त्री :

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—३०००

मई, १९६२

मूल्य—रु. २/—

● ● ●

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस,

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री प्रह्लाद प्रधानजीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, सम्पादित करने और काव्याशको कुमारी रेणुबाला सिन्हा तथा कुमारी हिरण्यमयी दाशजीने अनूदित कर इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। पुस्तकमें संकलित चित्र का ब्लॉक मैनेजर, 'राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस', कटकके सत्प्रयत्नोंसे उपलब्ध हुआ है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
उड़िया-साहित्य-परिचय [प्रारम्भसे १९२० तक]	१
कवि-परिचय	३५
काव्य-सञ्चय	५३

कवि-श्री माला

उड़िया

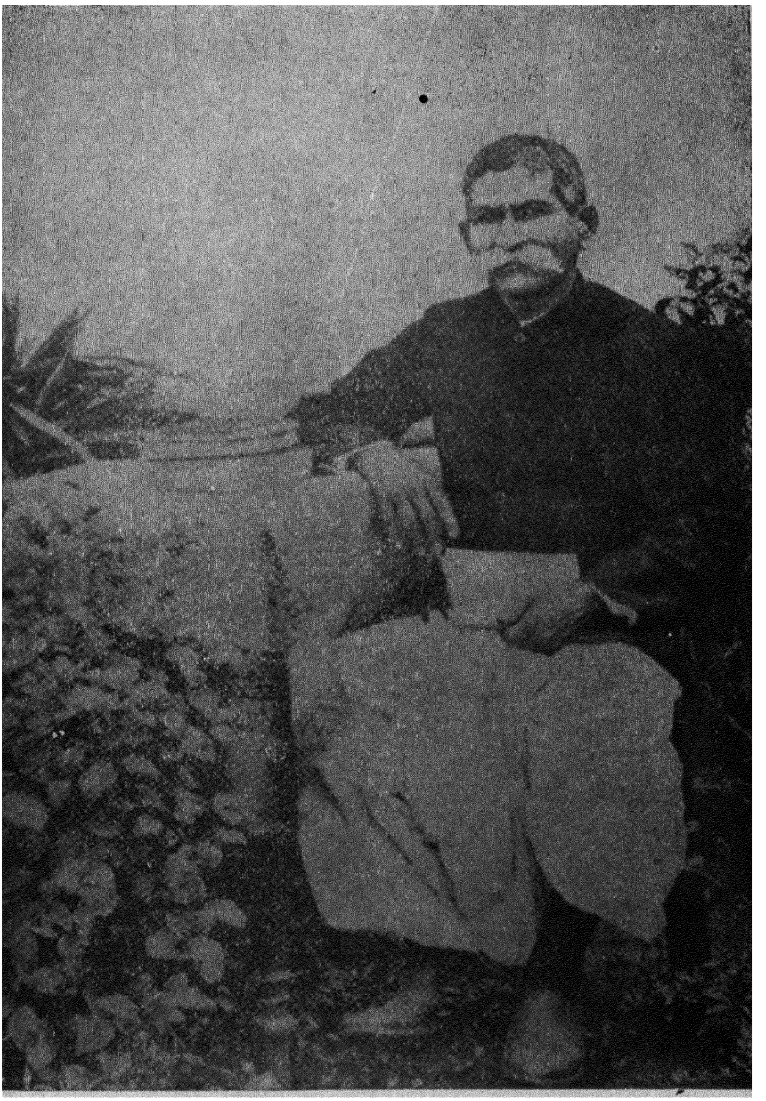

गंगाधर मेहेर

उड़िया साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

उड़िया भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

उड़ीसाकी भाषाका नाम उड़िया है। किन्तु उड़ीसामें इस भाषाका उच्चारण 'ओड़िया' है और देशका नाम 'ओड़िशा'। ओड़िशाको ओड्र विषयसे व्युत्पन्न माना जाता है। इसका उत्पत्ति क्रम इस प्रकार है :—ओड्रविषय>ओडविष> ओडिष>ओडिषा या ओड़िशा। तालव्य मागधीका लक्षण है, और उड़िया भाषामें मागधी प्राकृतके बहुतसे लक्षण पाये जाते हैं। संस्कृत ग्रन्थोंमें ओड्रका दूसरा रूप उड्र भी पाया जाता है, और भरत-नाट्य-शास्त्रमें उड्रविभाषा या बोलीका उल्लेख पाया जाता है।

शबराभीर चाण्डाल सचल द्राविड़ोड्जाः
हीना वनेचराणां च विभाषा नाटकं स्मृताः ॥१०।५०

इससे पता चलता है कि ईसवी सन्‌की प्रथम शताब्दीमें उड़िया भाषा विभाषा या बोलीके रूपमें लोगोंकी दृष्टिमें आने लगी थी और भी कितने प्राकृत वैयाकरणोंके मतानुसार इसका आधार द्राविड़ वर्गकी भाषा थी। इसलिए प्राकृत सर्वस्वकार मार्कण्डेयने कहा है :—

'शावर्यामेवौड्री योगात्तद्देश्य शौरसेन्या दे:'

अर्थात् शाबरीमें तद्देश्य या उड्रदेश्य और शौरसेनी आदिके योगसे औड्री या उड़िया भाषा बनी।

हो सकता है कि प्रारम्भमें उड़िया भाषाका आधार शावरी या कोई द्राविड़ी भाषा हो। लेकिन आजकी उड़िया भाषाके अध्ययनसे पता चलता है कि यह आर्य वर्गकी भाषाओंमें अन्भुक्त है और इसका सम्बन्ध मागधी अथवा अर्धमागधीसे है। प्राकृत कल्पतरुकार राम शर्माने शवरी, औड्री आदि भाषाओंको मागधी कहा है।

उड़ियाका मागधी व अर्धमागधीसे सम्बन्ध दिखानेका तात्पर्य है कि उड़िया-साहित्यका सम्बन्ध अन्यान्य प्रान्तीय साहित्यके समान भारतीय आर्य-भाषा-साहित्यसे है। भारतीय आर्यभाषाओके विकास-क्रममे आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओंके पूर्व रूपमें विभिन्न प्राकृतोंकी अपभ्रंश भाषाएँ है। उड़िया भाषा भी प्राच्या प्राकृत अर्थात् मागधी अथवा अर्धमागधीसे उत्पन्न होनेके कारण पूर्वी अपभ्रंशसे सम्बद्ध है। 'बौद्ध गान ओ दोहा' के गानोंकी भाषा पूर्वी अपभ्रंश मानी जाती है। इसलिए 'बौद्ध गान ओ दोहा' को उड़िया साहित्यके भी प्रारम्भिक कालका ग्रन्थ माना जाता है। कान्हुपा, लोहिपा, शबरपा आदि कई सिद्धाचार्य उड़ीसाके थे।

इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य या सिद्ध साहित्यको उड़िया-साहित्यका आदि काल माना जाए तो उड़िया-साहित्यका निम्नलिखित प्रकारसे काल-विभाजन किया जा सकता है :—

काल-विभाजन :

(१) **आदि युग**—इतिवृत्त युग या सारलादास युग : ११ वी प्रथमार्द्धसे १५ वीं शताब्दी पर्यन्त।

(२) **मध्य युग**—१६ वी शताब्दीसे १९ वीं शताब्दीके प्रथम भाग पर्यन्त।

(क) **पूर्व मध्य युग**—भक्ति युग या धार्मिक युग या पञ्चसखा युग : १६ वीं सदीसे १७ वी सदी पर्यन्त।

(ख) **उत्तर मध्य युग**—रीतिकाल या उपेन्द्र भञ्ज युग : १८ वीं सदीसे १९ वीं सदीके प्रथम भाग तक।

(३) **आधुनिक युग** या **स्वातन्त्र्य काल**—१९ वीं सदीके प्रथम भागके बाद।

यहाँ इस बातका उल्लेख कर देना अच्छा होगा कि किसी भी भाषाके साहित्यका काल-विभाजन करना इतना सहज नहीं है। साहित्यकी प्रवृत्ति या काल किसी एक दिनसे हठात् शुरू या समाप्त नहीं हो जाता। साहित्यकी प्रवृत्ति वास्तविक काल विशेषके पहले ही शुरू हो जाती है और उस युगके बाद भी बहुत दिनों तक चलती रहती है।

आदि युग :

उड़िया साहित्यके आदि युगको सारला-युग भी कहा जाता है। क्योंकि इस युगके मुख्य कवि थे सारलादास। किन्तु इनके पहलेका साहित्य भी इस युगके अन्तर्गत है। पहले कहा गया है कि 'बौद्ध गान ओ दोहा' को उड़िया-साहित्यके प्रारम्भिक कालका ग्रन्थ माना जाता है। अतएव यह भी आदि युगमें अन्तर्भुक्त है। भाषाकी दृष्टिसे साम्य तो है ही। कान्हुपा, शबरीपा, लोहिपा आदि उड़िया थे भी। इनके अतिरिक्त गोरख, मीननाथ, तन्तिपा, हाड़िपा आदि सिद्धोंका उड़िया-साहित्यमें बार-बार उल्लेख पाया जाता है। साहित्यिक धारा दृष्टिसे भी 'बौद्ध गान ओ दोहा' में प्रतिफलित विचारधारा आदि कालीन और पूर्व मध्य कालीन उड़िया साहित्यमें मिलती है। वह परम्परा मध्य युग तक चलती आई। सारलादासके 'पुराणों', नारायणानन्द अवधूत स्वामीके 'रुद्र सुधानिधि' और 'पञ्च सखा' साहित्यमें शून्य, सहज समाधि नैरात्म्य निरञ्जन, काय साधना, योगतत्व आदिकी चर्चा बार-बार देखनेमें आती है, जो 'बौद्ध गान ओ दोहा' में भी पाई जाती है। 'बौद्ध गान ओ दोहा' के 'ओड़ियाण' का भी 'ओड़ियाण' से सम्बन्ध है, जो कालिका तन्त्रके चार क्षेत्रोंमेंसे एक है बाकी तीन पूर्णगिरी, कामाख्या और श्रीहट्ट है। एक 'ओडियाण' स्वात अञ्चलके उद्यानसे सम्बद्ध हो सकता है। किन्तु चार पीठोंमेंसे एक 'ओड़ियाण' उड्रपीठ या उड़ीसा ही है। केवल रूप धारा की ही नहीं, रूप या छन्दोंकी भी परम्परा चली आ रही है। उन गानोंके राग 'परमञ्जरी' (पटहमञ्जरी), 'गुर्जरी' (गुज्जरी), 'देशाख' (देशाक्ष), 'भैरवी', 'कामोद', 'धनश्री' (धनाश्री), 'रामकी' (रामकेरी), 'वराड़ी', 'मालशी' (मालश्री) आदि आज भी उड़िया-काव्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। दोहे भी लिखे जाते थे। चित्र काव्य बन्धोदयमें उपेन्द्र भञ्जने अपने दोहोंके लिखनेका उल्लेख किया है। दोहेको 'डुहा' व 'दुहा' भी कहा जाता था। परवर्ती कालमें अवश्य यह धारा क्षीर्ण हो गई। उड़िया-साहित्यमें संध्याभाषाका भी बहुल प्रयोग मिलता है। 'बौद्ध गान ओ दोहा' में टेण्टण पादका संध्याभाषामें एक गान मिलता है :—

ढ़ालत मोर घर नाहि पड़वेषी
हाड़ित भात नाँहि नित आवेषी।
वेङ्ग संसार वड़हिल जांअ।
दुहिल दुधु कि वेण्टे षामाय॥
बलद बिआएल गविआ वाँझे।
पिढ़ा दुहिये ए तिना साँझे॥
जो सो बुधी सोध निबुधी।
जो षो चौर सोइ साधी॥

नित्ते नित्ते विआला विहे षय जुझअ ।
टेण्टण पाएर गोत बिचरिले बुझअ ॥

ठीक इसी प्रकारका सन्ध्याभाषामें गौरवका एक भजन उड़ियामें मलता है; यथा :—

कहिले कि प्रते जाइ रे मनुआ ।
वनस्तरे गाव वत्सा हर्राउँ बाघुणी आणे अड़ाइ ॥
ढ़िडिकिकि कलाणि आम्बशूला झाड़ा चालणी कि कला ज्वर ।
टोकाइ कुण्ढ़ाइ बापघरे गले छाञ्चुणि जगिछि घर ॥
कुम्भोर कु कला बात कफ ज्वर मेण्ढ़ा गला वैद्य पणे ।
दरिआ भित्तरे किछि न पाइला खाढ़ला मरिच पणे ॥
वेङ्ग मड़िअधि झुमुकि कठाउ नेउल नाकरे गुणा ।
मुषा शोइअछि रत्न पलङ्करे मञ्जारि विञ्चे विञ्चणा ॥
पिम्पुड़ि बापुड़ा विभा होइगला गगने उड़िला धूलि ।
बिलर कङ्कड़ा मावल धइले वेङ्ग देले दुलहुलि ॥

× × ×

कइँछ बापुड़ा बड़ दुधिआलि चालुणिरे मुहे दहि ।
से देहि खाइष गोरेख दास ये गले बइरागी होइ ॥

गोरखनाथके नामसे इस प्रकारके बहुतसे भजन उड़ीसाके लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके नामसे 'सप्तांग योगधारणं' नामक एक पुस्तक भी पाई जाती है। सातवारोंकी स्वर साधना इसका प्रतिपाद्य विषय है और यह एकनाथ पन्थकी पुस्तक-सी प्रतीत होती है। इसकी भाषा उड़िया है और इसको भी उड़िया साहित्यके आदि कालमें रखा जाता है। लेकिन सचमुच यह गोरखनाथकी लिखी है या नहीं, इसमें सन्देह होता है, जैसे कि 'गोरखबानी' आदिके बारेमें। गोरखनाथकी भाषा तो उड़िया नहीं थी। हो सकता है, दूसरे किसीने लिखकर गोरखनाथके नामसे चला दिया हो या यह भी हो सकता है कि गोरखनाथकी लिखी हुई यह पुस्तक काल क्रममें जनबोध्य होनेके लिए परिवर्तित हो गई हो, विषय वस्तुमें और भाषामें भी। किन्तु इतना तो सत्य है कि उड़िया-साहित्यके आदि कालमें नाथ सम्प्रदायका प्रभाव स्पष्ट है। इस परम्परामें 'शिशुवेद' को भी रखा जा सकता है और यह भी एक नाथ सम्प्रदायका ग्रन्थ है। सारलादासके 'महाभारत' में भी 'शिशुवेद' का उल्लेख आता है और इसको सारला-पूर्व साहित्य कह सकते हैं। किन्तु इसका काल निश्चित नहीं है। अभी तक यह पुस्तक छपी भी नहीं है। इसकी दो पोथियाँ मिली है। दोनोंमें विषयवस्तु प्रायः समान है, लेकिन एककी भाषा अपेक्षाकृत प्राचीन मालूम पड़ती है; जैसे :—

येक नुहँइ दुइ अलग विलग
(धु) निरहुँ निरनारे सेहु अलग।
सीशुभुना मध्यें शु योति प्रकाश
बदन्ति नाथ मेटी सिध्यङ्क विश्वाश ॥

इसकी तुलना 'दोहाकोष' के दोहोंसे की जा सकती है। इसमें 'शिशुवेद' का इस प्रकार अर्थ दिया गया है:—"दुइ कर्णरे तुला देइ भल करि वुझीब। रात्र पाहान्ति उठी लये करिब। ये वण धुनि शुभइ आकाशर मध्यें। येहाकु शिशुवेद बोलि।" [दोनों कानोंमें अँगुली देकर अच्छी तरह बन्द करना। रात भोर उठकर चय (ध्यान) करना। आकाशमें जो ध्वनि सुननेमें आती है, उसको 'शिशुवेद' कहा जाता है।] 'शिशुवेद' नाथोंका खास वेद तो नहीं है, इसमें भी संध्याभाषाका प्रयोग किया गया है; यथा :—

सपत समुद्रे थिला न खाइला निर
मातार गर्मे थाइ न खाइला खीर।
येड़े वड़ आइला तेड़े वड़ अछि
तासङ्गे परते हुअ गुरुमुखे पुछि ॥

इन दोहोंको पोथीमें श्लोक कहा गया है और गद्यमें इनकी टीका दी गई है।

उड़ीसाके संस्कृत नाटकोंमें एक विचित्र परम्परा पाई जाती है। परम्पराके अनुसार संस्कृत नाटकोंमें संस्कृत और विभिन्न प्रकारके प्राकृत प्रयोग किए जाते हैं। किन्तु उड़िया-साहित्यके आदि कालीन संस्कृत नाटकोंमें प्राकृतके बदले गानमें उड़िया भाषाका प्रयोग किया गया है। कपिलेन्द्र देवके 'परशुराम विजय' नामक संस्कृत व्यायोगमें एक उड़िया गान पाया जाता है; जैसे :—

अम रागेण गीयते

केवण मुनि कुमर परशु दक्षिण कर
वामेण शोहे धनु शरना
कोपेग वोलइ वीर त तु से बधिलू मो तात
आज तोर छेदिबइ माथ ना।
शुष राजन हो, किए तोर राज्ये ब्रह्म बधेना। इत्यादि।

कपिलेन्द्र देव (ई. सन् १४३५ से १४६७): मादलापाञ्जीको साहित्य माना जाए तो वह भी आदि कालके अन्तर्गत है। यह जगन्नाथ मन्दिरमें सुरक्षित है और 'आसाम' वुरुञ्जिके समान इसमें उड़ीसाके राजवंशोंका और जगन्नाथ मन्दिरके नियमोंका इतिहास लिपिबद्ध है।

किवदन्तीके अनुसार गंग वंशके प्रथम राजा चोलगंगदेवने ई. सन् १०४२ (कन्द २४ दिन, शुक्ल दशमी दशहराके दिन) इस पञ्जिको लिखना शुरू किया था। लेकिन भाषाकी दृष्टिसे विचार करनेपर यह इतना प्राचीन नहीं मालूम होता। हो सकता

है कि इसकी भाषा परवर्ती पञ्जी लेखकोंने सुबोध करनेके लिए भाषाको बदल दिया हो। दूसरोंका मत है कि यह मुगलकालमें, १६ वीं शताब्दीमें रामचन्द्र देवके राजत्व कालमें लिखवाई गई थी। मादलापाञ्जीके अतिरिक्त उड़िया गद्यमें कुछ व्रत कथाका साहित्य भी मिलता है। उसमें 'सोमनाथ व्रत कथा' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका काल तो निश्चित नहीं है, पर भाषासे यह भी प्राचीन-सी प्रतीत होती है। इसमें 'सोमनाथजी' की पूजाका विधान है। इसके लेखकका नाम अज्ञात है। लेकिन इसके वक्ता परमेश्वर शिव, और श्रोता देवी पार्वती हैं। इस कथामें वीर विक्रमाजीत आते हैं। इसकी भाषा परिमार्जित और शैली प्रवाहशील है।

इस कालका और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है 'रुद्र सुधानिधि'। इसको भी सारला-पूर्व काल (१३ वी या १४ वीं सदी)का कहा जाता है। यह पुस्तक सम्पूर्ण प्राप्त नहीं है। प्राप्त अंश सम्पूर्ण छपा भी नहीं है। इसके लेखक एकाम्रकानन निवासी नारायणानन्द अवधूत स्वामी हैं। इसमें एक योगभ्रष्ट योगीका वृत्तान्त वर्णित है और यह एक शैव सम्प्रदायका ग्रन्थ-सा मालूम पड़ता है। इसकी भाषा बन्ध दृढ़ और अत्यन्त प्रवाहशील तथा शैली परिपक्व है। पढ़नेसे मालूम होता है कि यह वृत्त गन्धि गद्यमें या दाण्डि वृत्तमें लिखा गया है। इसकी रचनामें अनुप्रास और यमक आदि पूर्ण मात्रामें मिलते है। कहीं-कहीं 'अखरावट' के नियमका पालन किया गया है। अभिनव चइतन नामके रुद्रगणोंमेंसे एकने आदिमे 'अ' से 'क्ष' तक वर्ण क्रम रखकर शिवकी स्तुति की है। सचमुच यह एक अपूर्व ग्रन्थ है।

'कलसा चउतिशा' भी सरला-पूर्व काल या आदि कालका कहा जाता है। इसके लेखक बच्छादास है। लेकिन उनका काल निश्चित नही है। यह एक हास्य रस प्रधान काव्य है और इसमें शिवजीकी वर यात्रा और पार्वतीके साथ विवाहका वर्णन है। इसमें शिवजीको अत्यन्त वृद्धके रूपमे चित्रित कर हास्य रसकी अवतरणाकी गई है।

सारलादास: सच कहा जाए तो सारलादास ही उड़ीसाके प्रथम जातीय महाकवि है, और उड़िया-साहित्यके आदि कालका प्रतिनिधित्व करते है। उन्होंने अपनेको शूद्र मुनि और जन्मसे अज्ञानी, मूर्ख, अपण्डित आदि कहा है।

सारलादास उड़ीसाके सूर्यवंशी प्रथम राजा गनपति कपिलेन्द्र देवके राज्यकालमें हुए थे। उनका राज्य काल ईसवी सन् १४३५ से १४६७ तकका है। कुछ लोग उनको गंग वंशके कपिल नरसिंह देवका समकालीन मानकर उनका काल ईसवी सन् १३२८ से १३५२ तक बताते है। किन्तु सूर्यवंशीय कपिलेन्द्र देव ही सारलादासके समयके राजा थे, यह मत अधिक जँचता है।

उनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं—'विलंका रामायण,' 'महाभारत' और 'चण्डीपुराण'। सारलादासके अपने कथनके अनुसार 'विलंका रामायण' उनकी प्रथम रचना है। इसमें देवीरूपमें सीताकी महत्ता बतलाई गई है।

यह 'विलंका रामायण' 'अद्भुत रामायण' पर आधारित है। किन्तु 'अद्भुत रामायण' का सहस्र शिर विलंका रामायणमें सहस्रभुज हो गया है, और वहाँका पुष्कर यहाँ विलंका हो गई। 'विलंका रामायण' में नारी और शक्तिका प्राधान्य दिखाया गया है।

सारलादासके लिखे हुए ग्रन्थोंमेंसे यह अन्तिम है। 'चण्डीपुराण' में सारलादासने खुद कहा है :—

प्रथमे रामायण, द्वितीये महाभारत
तृतीये लेखन मुं कलइँ भागवत।

[मैंने प्रथम रामायणकी रचना की, उसके बाद महाभारत की, और उसके बाद भागवत की।]

यहाँ रामायणका अर्थ है—'विलंका रामायण' और भागवतका अर्थ 'देवी भागवत' या चण्डीपुराण है। विलंका रामायणमें जिस प्रकार शक्तिका माहात्म्य दिखाया गया है, उसी प्रकार चण्डीपुराणमें भी। इसकी रचना मार्कण्डेय पुराण-महिषासुर-वध उपाख्यान और देवी भागवतपर आधारित है; फिर भी इसमें मौलिकता है। चण्डीपुराणमें महिषासुर, महिषसिंहके रूपमें वर्णित है। वह कपिलसिंह राक्षसका पुत्र था। उसके जन्मके बारेमें कहा गया है कि कपिलसिंहके रमणसे भीत होकर उसकी पत्नी धर्मरेखा सिंहलमें भाग गई। वहाँ महिष रूपिणी धर्म-रेखाके साथ यमके वाहन कृतान्तक महिषके बलपूर्वक रमण करनेसे महिषसिंह पैदा हुआ। कपिल कविसे सम्वाद पाकर कपिलसिंह सिंहल गया और उसने अपनी पत्नी धर्मरेखासे भेंट की। उससे सब सुनकर उसने महिषासुरको अपने पुत्रके रूपमें ग्रहण किया। इसके आगे महिषासुरकी तपस्या, शिवसे वर-प्राप्ति, दिग्विजय, चन्द्रावतीके साथ विवाह, शुम्भ-निशुम्भका स्वर्गपर आक्रमण, दुर्गाका आविर्भाव, रत्नगिरिमें अवस्थान, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ, कान्तिमाल, रक्तबीर्य, वीरघण्टका काल-विमोचन आदिका वध, महिषासुरका रत्नगिरि उत्पातन, शून्य उपशून्यका वध और अन्तमें महिषासुरका वध वर्णित है।

इसमें युद्ध-डाकिनियों आदिका वर्णन अत्यन्त मनोरम है। इसमें शैव धर्मकी अपेक्षा, शाक्त धर्मका प्राधान्य दिखाया गया है। यह दाण्डि वृत्तमें लिखा गया है। अर्थात् पदोंकी अक्षर संख्याका कोई नियम नहीं है। इसमें एक पंक्तिमें तेरह अक्षर तो दूसरीमें तेंतीस है, किन्तु अन्तमें तुक मिलती है। लेकिन आजके मुद्रायन्त्रके अधिकारियोंने इसे बदलकर समाक्षर अर्थात् चतुर्दशाक्षरोंमें परिणत कर दिया है और वही आज उपलब्ध है।

'महाभारत' सारलादासका सबसे बड़ा ग्रन्थ है, और सबसे ज्यादा प्रसिद्ध भी। इसे भी चतुर्दशाक्षरोंमें परिणत कर मुद्रित किया गया है। लेकिन उसका एक शुद्ध संस्करण भी निकालनेकी व्यवस्था हो रही है।

यह विशाल ग्रन्थ मूल संस्कृत महाभारतका अनुवाद नहीं है। वह इसका आधार तो है, लेकिन इसमें बहुत व्यतिक्रम है, और पर्व क्रममें भी।

मूल महाभारतके तीन पर्वोंका नाम सारलादासके महाभारतमें नहीं है; ये तीन हैं—सौप्तिक, अनुशासन और महाप्रस्थान। इसके बदलेमें तीन नाम मिलते हैं—मध्यगदा, काइँशका या ऐषिक, अर्थात् सारलादासने आदि पर्वको तोड़कर दो पर्व कर दिया है, शल्य और गदा, और सौप्तिक पर्वके बदले काइँशका या ऐषिक। मूल महाभारतमें गदा पर्व, शल्य पर्वका एक उपपर्व है, और ऐषिक पर्व सौप्तिक पर्वका एक उपपर्व। यहाँ दोनों एक-एक पर्व है, अनुशासन पर्वको उड़ा दिया गया है और महाप्रस्थान पर्वको स्वर्गारोहण पर्वमें जोड़ दिया गया है।

पहले कहा ही गया है कि सारलादासका महाभारत मूल संस्कृत महाभारत का अनुवाद नहीं है, उसपर सिर्फ आधारित है। पर्व-क्रममें व्यक्तिक्रमके अलावा पर्वोंकी कथाओंके वर्णन-क्रममें भी व्यतिक्रम है। कहीं-कहीं मूल कथाओंको बिलकुल छोड़ दिया गया है। कहीं-कहीं मूलमें अनुपलब्ध कथावस्तुओंको सम्मिलित बना दिया गया है, और कहीं-कहीं मूल कथाओंमें व्यतिक्रम किया गया है। महादेवके साथ अर्जुनका युद्ध, मूल महाभारतके वन पर्वमें दिया गया है, किन्तु सारलादासके महाभारतके आदि पर्वमें। इसी प्रकार उद्योग पर्वका अम्बोपाख्यान आदि पर्वमें है। बनवासके प्रथम भागमें पाण्डवोंने सोमदैत्य और किमीर दैत्यका बध किया था। इसका उल्लेख सारलादासने नहीं किया है। दुर्योधनके उरु भंग-प्रसंगमें मूल महाभारतका सारस्वत अुपाख्यान, गान्धारीको श्रीकृष्णकी सान्त्वना, इत्यादि विषय भी सारलादासने छोड़ दिया है। जो कथाएँ मूलमें नहीं हैं, इस प्रकारकी कथाएँ भी जोड़ दी गई हैं। जैसा कि उद्योग पर्वमें बावना भूतका चरित्र, अलसौहोंका विवरण इत्यादि। सबके कहनेपर भी सिर्फ शकुनिके उपदेशानुसार दुर्योधन जब सन्धि करनेके लिए तैयार नहीं हुए, तब भानमती दुर्योधनसे कहती है कि बहुत लोगोंके कथनको छोडकर एकका कहना सुननेसे अनर्थ होता है, जैसा कि बावना भूतका। तुंगभद्रा नदीके तटपर भूतोंका एक अडडा था। पश्चिमसे शूद्र नामका एक राउल वहाँ जाकर बस गया और तिलकी खेती करनेके लिए उसने गाँववालोंसे भूतावासको माँगा। वहाँ जब वह खेती करवाने लगा तो भूतोंने हल जोतनेवालोंको सताया। यह देखकर राउलने जालसे सब भूतोंको पकड़ा तो सब भूत डर गए, और साठ मन तिल देनेके लिए राजी हुए। लौटकर आनेके बाद भूतोंके राजा बावना भूतको जब यह मालूम हुआ तो वह बहुत बिगड़ा और सबके कहनेपर भी वह न माना और वहाँ गया। उसने राउलके लड़केको सताया। राउलने यह देखकर बावना

भूतको लोहेके जालमें पकड़ा। भूतने साफ किए हुए एक सौ अस्सी मन तिल देना मान्य किया। यह उड़ीसाकी लोककथा है।

अलसौहें की कहानी भी इसी प्रकार की है। यह कहानी भी उड़ीसामें काफी प्रचलित है। सारलादासने अपनी महाभारतमें इसे स्थान दिया है। कृष्ण-वेणी नदीके तटपर मेलक नामका एक अलसौहों था। काठ काटनेके सिवाय वह कुछ नहीं जानता था। एक बार जब बड़ा तूफान आया तो काठके बिना उसने एक दिनका उपवास किया। दूसरे दिन जब उसकी पत्नीने जंगलसे काठ लानेके लिए कहा तो, वह कुल्हाड़ी लेकर जंगलको गया। रास्तेमें एक मन्दिरमें सो गया। जब साँझ हो गई तो वह घबराकर उठा और मन्दिरके भीतर जाकर उसने देखा कि वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी दारु (काष्ठ विशेष) की बनी हुई मूर्तियाँ हैं। अतः उसने विष्णुकी उस प्रतिमाको लाकर उसको अच्छा सूखा काठ समझकर काटना प्रारम्भ किया। यह देखकर विष्णु घबरा गए और उसके कहनेके अनुसार तीन दिनका भोजन दिया। तीन दिनके बाद आकर वह फिर काटने लगा तो हमेशाके लिए उसकी व्यवस्था हो गई। यह देखकर अनन्ता नामके उसके पड़ोसीने भी ऐसा ही किया तो महेश्वर, रुद्र रूप धारणकर, उसको नखसे चीरने लगे। अनन्तने पूछा कि यह प्रभेद क्यों? शिवजीने कहा—मूर्ख और ज्ञानी, देव और दानवमें अन्तर होता है। तुम ज्ञानी हो और वह मूर्ख है।

भारदा-उपाख्यान भी मूल महाभारतमें नहीं है। भारदा एक कुत्सित पुरुष था, सहदेवके कथनानुसार उसे पकड़कर भीमने युद्ध-क्षेत्रके एक स्तम्भसे उसे बाँध दिया रातको भूत, बावना भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनी, राक्षसी, पिशाचिनी आदिने आकर तथा आदमीको बँधा देखकर खुशी प्रगट की, लेकिन भारदाको पहचानकर और उसे कुत्सित तथा अपवित्र जानकर वे उसे छोड़कर चले गए। अन्तमें अम्बिका सियार और जाराक्षी सियारिन आई और उन्होंने भी उसे छोड़ दिया, किन्तु उसीके सामने अम्बिका सियारने महाभारत युद्धके १८ दिनोंमें होनेवाली सारी घटनाओंकी भविष्यवाणी की, और अपनी अपवित्रताके कारण जीवित लौटकर युधिष्ठिरके सामने सब वर्णन किया। वह पूर्व जन्ममें जिस समय जयसेन गंधर्वका और उसकी पत्नी मेनाकी कन्या मदनिकाको, इन्द्रके आज्ञानुसार कुबेरके पास ले जा रहा था, उस समय रास्तेमें उससे रमण करनेके कारण कुबेरने उसे शाप दिया था। यह कथा उड़ीसाकी ही है।

स्वर्गारोहणके समय सारलादास पाण्डवोंको उड़ीसामें खींच लाए थे। उस समय वे चित्रोत्पला पारकर धर्मनगर या याजनगर (याजपुर) पहुँचे, तो उसी पासवाली अमरावतीके हरिसाहुकी कन्या सुहानीसे युधिष्ठिरका विवाह हुआ। सुहानीके जातकमें था कि वह विवाहके दिन मर जाएगी, लेकिन अर्जुनके पराक्रमके कारण यम उसे नहीं ले जा सका।

गोलयुद्धके बाद दुर्योधन अपने लड़के लक्ष्मणकुमारकी पीठपर रक्त नदी सन्तरण करते हैं, यह बड़ा कारुणिक वर्णन है। यह बंगलाके काशीनाथ महाभारतमें भी देखनेमें आता है, तथा परवर्ती कवि राधानाथ रायने उसीके आधारपर एक लम्बी कविता लिखी है।

इस प्रकार हम लोग देखते हैं कि इसमें उड़ीसाकी किंवदन्तियाँ देव-देवियाँ, नदी-पहाड़, तीर्थ भूमियाँ, सामाजिक रीति-रिवाज,धर्म-सम्प्रदाय सभी सन्निविष्ट है। नाम बदलकर अन्य नामोंसे उस कालका इतिहास भी इसमे लिपिबद्ध है। सच कहा जाए तो यह एक विशाल जातीय ग्रन्थ है। यह काल इतिहास और पुराणका युग था, इस युगकी मुख्य प्रवृत्ति ऐतिहासिक या पौराणिक थी। इसी युगमे उड़िया साहित्यका बलिष्ट उन्मेल हुआ था।

उड़िया साहित्यका यह उन्मेष सिर्फ संस्कृत साहित्य या पुराणोंके आधारपर नहीं हुआ, बल्कि इस कालमें मौलिक रचनाएँ भी हुई; 'रुद्र सुधानिधि'की तरह और भी मौलिक रचनाएँ हुई थीं। मार्कण्डदासकी केशवकी, इसी प्रकारकी एक रचना है। यह भी चौतीसाके क्रममे लिखी गई है, लेकिन इसमे कोइल (कोयल) को सम्बोधन किया गया है। इसमें श्रीकृष्णके मथुरा जानेके बाद पुत्र विरहित यशोदा कोयलको सम्बोधित कर अपनी मानसिक व्यथा व्यक्त करती है। यह वात्सल्य रसका एक अनुपम खण्डकाव्य है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल और भाव बड़े ही मर्मस्पर्शी है।

यह उड़िया साहित्यका प्रथम कोइल खण्डकाव्य है। इसके बाद उड़िया साहित्य, कोइलि साहित्यसे, अत्यन्त समृद्ध हुआ, और पञ्चसखाओंके बलराम-दासने,'वारमासी कोईलि',शंकर दासने 'कान्त कोइलि', नाथ दासने 'ज्ञानोदय कोइलि' तथा दूसरोंने सैकड़ों कोइलियाँ लिखीं। पञ्चसखाओंके जगन्नाथदासने इसपर एक 'अर्थ कोइलि' लिखी, जिसमें इसका शरीर तत्व परक अर्थ किया गया है।

इनका दूसरा ग्रन्थ महाभाष है। यह अबतक अप्रकाशित है। यह एक तत्व परक ग्रन्थ है। इसमे शिव-पार्वती सम्वाद है। और श्री रामचन्द्रजीके ध्यानसे ज्ञानोदय इसका प्रतिपाद्य विषय है।

तत्व परक ग्रन्थोंको छोड़कर इस युगमें काव्य ग्रन्थ भी लिखे गए। इसी युगमे अर्जुनदासने 'राम-विभा' (राम-विवाह) नामक एक काव्य लिखा था, ये सारला दासके परवर्ती थे। 'राम-विभा' के बालि, सुग्रीव और हनुमानके जन्म वृत्तान्त, सारला दासके अनुसार दिए गए है।

यह ग्रन्थ बारह छन्दो (सर्गों) में लिखा गया है, और विभिन्न छन्दोंमें विभिन्न राग-रागिनियोंका व्यवहार किया गया है। इसमें विश्वामित्रके निमन्त्रण से लेकर परशुराम दर्प-दलन तक रामचरित वर्णित है। इसकी भाषा प्राचीन-सी लगती है। उपेन्द्र भञ्ज, उनके पितामह धनञ्जय भञ्ज और उनके पूर्ववर्ती कवि

प्रताप राय, कार्तिकदास प्रभृतिने 'राम विभा' का उल्लेख किया है। इसी युगका और एक काव्य है 'उषाभिलाष'। इसके रचयिता शिशुशंकर दास हैं। इनका समय निश्चित रूपसे निर्धारित नही है, किन्तु प्रतापराय, कार्तिकदास, धनञ्जय भञ्ज, प्रभृतियोंने इनके 'उषाभिलाष' का उल्लेख किया है। इसमे वाणासुरकी कन्या उषा और प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका विवाह वर्णित है। इसमें सारलादासके महाभारतमें वर्णित 'उषा-हरण' का प्रभाव परिलक्षित होता है। उषाका पिता वाणासुर सहस्त्र भुज था और शोणितपुरका राजा था। सारलादासके अनुसार शोणितपुर वैतरिणीके तटपर था। इसमें शृंगार रस प्रधान है, और कही-कहीं करुण और वीर रसके छींटे भी दिखाई पड़ते है।

इस युगकी और एक विशेषता है कि इस कालमें संस्कृतके काव्य ग्रन्थोसे उड़ियामें अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। कवि धरणीधरने जयदेवके 'गीत-गोविन्द' का उड़ियामें पद्यानुवाद किया है। अनुवादकी भाषा सरल और भाव प्रकाशनमें समर्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युगमें उड़िया साहित्यका विभिन्न दिशाओंमें विकास हुआ।

मध्य-युग :

मध्य युगका दो भागोंमे विभाजन किया गया है---पूर्व मध्य युग और उत्तर मध्य-युग।

(क) **पूर्व मध्य युग**: पूर्व मध्ययुगको भक्ति युग भी कहा जा सकता है, लेकिन यह भक्ति रागानुरागा नहीं, ज्ञान मिश्रा है; प्रेम प्रधान नहीं, योग प्रधान है। इसमें काय साधना और पिण्ड-ब्रह्माण्ड तत्व प्रधान है। हम आदि कालके प्रति-दृष्टि डालें तो उसमें प्रधानतया तीन धाराएँ नजर आएँगी---धर्म धारा, पुराण धारा और काव्य धारा। धर्म धारामें 'बौद्ध गान ओ दोहा' की शून्य साधना आती है। चर्चा पदमें है:---

पेरवमि दह दिह सत्वई शून
चिअ विहुन्ने पाप न पुन्न
चिअ सहजे शूण सम्पुन्जा
कान्ध वियोरा मा होहि विसन्ना

इससे यह भी जाहिर होता है कि शून्यसे चित्त या मनका सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया है---'मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयोः।' इस प्रकारकी शून्य साधनाके लिए काय साधना अपेक्षित है, और काय साधनाके लिए नाड़ी योग। इसलिए श्री काल चक्र तन्त्र ने कहा है :---

'काया भाषे न सिद्धिर्नच परम सुखं प्राप्यते जन्मनि' और 'तस्मात् कार्यार्थ हेतोः प्रतिदिन समये भावयेन नाड़ी योगं काये सिद्धेन्यसिद्धि स्त्री भुवन

निलय किंकरत्वं प्रयाति।' अर्थात् कार्य न होनेसे इस जन्ममें न सिद्धि, न परम सुख मिलता है। अतः कार्य सिद्धिके लिए प्रतिदिन समयके अनुसार नाड़ी योगका अभ्यास करना चाहिए। त्रिभुवनका निलय काय सिद्ध होनेसे अन्य सिद्धियाँ दासियाँ हो जाती है। इसमें कायको त्रिभुवन निलय कहा गया है। इसीमें पिण्ड-ब्रह्माड तत्वका बीज है। इसलिए 'दोहा कोष' में कहा है :—

एत्थु से सुरसरि यमुणा एत्थु से गंगा साअरु
एत्थु प्रयाग वाराणसी एत्थु से चन्द्र दिवाकर

[इसीमें वह सुरसरित गंगा-यमुना है, इसीमें गंगा सागर है। इसीमें प्रयाग वाराणसी हैं और इसीमें चन्द्र-सूर्य है।]

श्री काल चक्र तन्त्रके उपर्युक्त श्लोकमे और एक लक्ष्य करनेकी बात है—'प्रतिदिन समये!' प्रतिदिनका समय क्या है? मेदिनीकारने समयका अर्थ दिया है—आचार, सिद्धान्त क्रियाकार इत्यादि। गोरखनाथके नामसे प्रचलित 'सप्तांग योग कारणं' का सम्भवतः इसीके साथ सम्बन्ध है। इस साधनाके अनुसार सातवारोंमें विभिन्न स्वर साधनाकी विधि है।

नाथ पन्थमे यही परम्परा चली आती है। इसमें भी नाड़ीयोगकी साधना बताई गई है, और पिण्ड-ब्रह्माण्ड तत्वका उल्लेख है। सिद्धों और नाथोंका साधना मार्ग करीब-करीब एक है; अन्तर है उपास्य देवताओंमें। सिद्धोंके अनुसार—

पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ
देहंहि बुद्ध बसन्त न जाणइ

[पण्डित सकल शास्त्र व्याख्यान करता है, किन्तु देहमें बुद्ध वास करते हैं, यह नहीं जानता।]

अर्थात् देह स्थित बुद्ध ही उपास्य है। नाथोंके अनुसार बुद्धके स्थानपर शिव आ गए। और भी बौद्धोंके गुह्य समाज यानमे बुद्धकी युगनद्ध मूर्तिकी कल्पना की गई थी। उसके स्थानमें शिव-पार्वती आ गई, किन्तु इनमे सबसे अनुकूल राधाकृष्णकी युगल मूर्ति हुई। इसलिए उड़िया साहित्यके पूर्व मध्य युग या भक्ति कालमें ललाट चक्रमें राधाकृष्णकी युगल मूर्तिके ही साक्षात्कारका उल्लेख मिलता है और उसीको नित्य गोलोक, नित्यरास स्थल इत्यादि कहा गया है। या महा भट्टाशून्य उत्कलीय वैष्णवोंके मतमें शून्य पुरीके जगन्नाथ और राधाकृष्णकी युगल मूर्ति एक और अभिन्न है। साधना मार्ग किन्तु वही रहा। साधना है काय साधना और योग है नाड़ी योग।

उड़िया साहित्यके इस पूर्व मध्य युगको 'पञ्चसखा' युग भी कहा जाता है। पञ्च सखा है:—बलरामदास, जगन्नाथदास,अनन्तदास, यशोवन्तदास और अच्युतानन्ददास। इसी समय चैतन्यदेव उड़ीसा आए थे और उड़ीसाके इन पाँच महापुरुषोंके साथ सख्य स्थापन किया था, जिससे इनका 'पञ्चसखा' नाम पड़ गया। वे पहलेसे पञ्चसखा थे भी। अच्युतानन्दकी 'शून्य संहिता' में इनके लिए 'पञ्चसखा' और

'पञ्चशाखा' दोनों नाम आते हैं। 'पञ्चशाखा' या सम्प्रदायोंके मुख्य थे भी ; इनकी पाँच गादियाँ थीं और उनमें बलराम समतारक मन्त्रके, जगन्नाथदास षोडश नाम या बत्तीस अक्षर मन्त्रके, यशोवन्तदास श्याम पञ्चाक्षर मन्त्रके, अनन्त-दास एकाक्षर मन्त्रके, और अच्युतानन्ददास अणाक्षर मन्त्रके उपासक थे। इससे यह पता चलता है कि वे समन्वयवादी थे।

पञ्चसखाओंमें प्रत्येकने मन्त्र लिखे थे। पहले कहा गया है कि आदि कालसे तीन धाराएँ चली आती थीं—धर्म-धारा, पुराण धारा और काव्य धारा।

बलरामदास : उनका जन्म-काल करीब ई. सन् १४७२ था। वे पञ्चसखा-ओंमें श्रेष्ठ थे। उनके पिताका नाम सोमनाथ महापात्र और माताका नाम जम्बुवती या यमुना था। वे ज्ञान मिश्र या योग मिश्र भक्तिके साधक थे। उनकी मस्ती देखकर श्री चैतन्य देव उनको 'मत्त बलराम' कहा करते थे। इसलिए वे 'मत्त बलराम' के नामसे प्रसिद्ध हैं। सिद्धिसे सम्बन्धित उनकी अलौकिक शक्तिकी अनेक घटनाएँ प्रचलित है।

उनका 'दाण्डि रामायण' उड़ीसामें अत्यन्त प्रसिद्ध है। सारलादासके महा-भारतके समान 'दाण्डि वृत्त' लिखा गया था। इसलिए इसका नाम 'दाण्डि रामायण' पड़ गया। किन्तु मुद्रित पुस्तकमें इसको भी चतुर्दशाक्षरी वृतमें परिवर्तित कर दिया गया है। इसका असली नाम'जगमोहन रामायण'है, क्योंकि जगमोहन' अर्थात् जगन्नाथ जीकी आज्ञासे यह रामायण लिखी गई थी। सारला महाभारतकी तरह यह भी वाल्मीकि रामायणका ठीक-ठीक अनुवाद नही है। ऋष्य श्रृंग चरित, परशुराम चरित आदिमे अन्तर तो है ही, उसके अतिरिक्त उड़ीसाका गौरव बढ़ानेके लिए भी कई प्रसंग आते हैं, जैसे महादेवका वास स्थान कैलास, उड़ीसाका कपिलास ही है। रावणने उड़ीसाके विरजाक्षेत्र (याजपुर) में तपस्याकर शिवजीसे वर प्राप्त किया था, वानर सेनापतियोंका जन्म-स्थान उड़ीसाके कोर्णाक, धवलगिरि, वणाई बामण्डा इत्यादिको बताया गया है। इसमें उड़ीसाका जातीय और सामाजिक जीवन पूर्णरूपमें प्रति-बिम्बित हुआ है। सीता भी उड़ीसाकी बहू-सी लगती हैं। यह ग्रन्थ पुराण साहित्यकी धारामे आता है।

उन्होंने योग और तत्व परक ग्रन्थ भी अनेक लिखे है। इनमें वेदान्तसार, ब्रह्माण्ड भूगोल, दीप्तिसार, सिद्धान्ताडम्बर, अर्जुनगीता, अमरकोष गीता, गुप्त गीता आदि प्रमुख है। गुप्त गीताके केवल आठ ही अध्याय उन्होंने लिखे थे। उसका शेष अंश एक दूसरे बलरामदास ने पूर्ण किया।

उनके काव्योंमे 'वटअवकास,' 'पणसचोरी',' भाव समुद्र' आदि प्रधान है। 'भाव समुद्र'भक्ति काव्यका एक अपूर्व ग्रन्थ है। गुण्डिचा या रथ यात्राके समय बलराम दासने नन्दी कोष रथके ऊपर चढ़नेकी चेष्टा की, तो राजाकी आज्ञासे पण्डोंने उन्हें धक्का देकर निकाल दिया। इस अपमानसे रूठकर वे वांकी मुहाण चले गए, और वहीं

एक बालूके तीन रथ बना ठाकुरोंको बैठाकर जगन्नाथजीको कोसने एवं निन्दा करने लगे। इधर रथ नहीं चला। जगन्नाथजीके आदेशसे जब गजपति महाराज स्वयं जाकर उनको लाए तो रथ चला। इस स्तुतिमें इतना दर्द, इतना अभिमान है कि एक सच्चा भक्त ही इसे लिख सकता है। इसमें रामकृष्ण और जगन्नाथ सब एक हो गए हैं। इसकी भाषा भी दर्दमयी और छन्द भी अत्यन्त अनुकूल हैं।

इसके कुछ पद देनेका लोभ सम्हाला नहीं जाता :—

हरि हो—बालिरे त्रिरथ करिछि मुहिँ।
सन्तोषे विजय कर गोसाईं॥
नाथ तु सारथि पणे से थाउ।
रथी बोलाइ येणे तेणे याउ॥
हरि हो—हातके बाग आर ड्रोते घाट।
दास बलरामर तु हिं आण्ट॥१४॥
हरि हो—से जले येबे बुड़ि मरिथान्तु।
बलिआर दुःख कि या देखन्तु॥१५॥
हरि हो—राधा सङ्गे कलु निघन प्रीती।
गोपरे रखिलु उज्ज्वल कीर्ति॥
नाथ तो रस कउतुक लीला।
चन्द्रसेणासे गोगोष्ठुं मिलिला॥
हरि हो—गउड़ धरि तो छेजञ्ता शिर।
बलराम दास हँसे कर्कर॥३८॥
हरि हो—लाज संकोच द्वय तोर नाहिँ।
सीताकु रावण नेला चोराइ॥
नाथसे पुरा केमन्ते आणिलु।
ताकु घेनि पुणि घर कु गलु॥
हरि हो—से कथाकु लाज नोहिला तोर।
बलिआ दास कु करिबु पार॥५१॥
हरि हो—परस्तीरि हरि पाषाण हेलु।
शिला शालग्राम नाम बहिलु॥
नाथ तु गोपरे कलू अनीति।
ब्रज स्तीरि संगे रगं पीरिति॥
हरि हो—सेहि शापरु हेलु दारु रूप।
बलरामदास कु करू गोप्य॥६६॥

इत्यादि

इसमें इस प्रकारके ७४८ पद हैं। उसके अतिरिक्त उन्होंने कई 'चउतिशाएँ' और 'कोइलिया' लिखी हैं। उनका श्रीमद्भगवद्गीताका उड़ियामें एक पद्यानुवाद भी मिलता है।

जगन्नाथदास : पञ्चसखाओंमें द्वितीय सखा जगन्नाथदास है। उनका जन्मकाल करीब ई. सन् १४९० है। उनके पिता पुरीके निकट कपिलेश्वपुर शासकके पुराण पंडा थे। पिताका नाम भगवानदास था और माताका नाम पद्मावती। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे और आठ सालकी उम्रमें पुरी मन्दिरके वटगणेशके पास भागवतकी प्राञ्जल व्याख्या करते थे। कहा जाता है कि १८ सालकी उम्रमें बलरामदाससे उन्होंने दीक्षा ली थी और ६० सालकी उम्रमें उनका तिरोभाव हुआ। श्री चैतन्य देव उनकी अलौकिक शक्ति देखकर उनको 'अतिबड़' कहने लगे। इसलिए उनकी 'अति बड़' उपाधि हो गई और उनका सम्प्रदाय 'अतिबड़ी' सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्ध है।

उनकी कृतियोंमें सबसे प्रसिद्ध श्रीमद्भागवतका गुहारी या नवाक्षरी वृत्तमें सरल, सुमधुर और सुललित पद्यानुवाद है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इस वृत्त का नाम भागवत पड़ गया। हिन्दी प्रान्तोंमें रामायणके समान या उससे अधिक यह उड़ीसामें प्रचलित है। इस पद्यानुवादके फलस्वरूप उड़ीसा के गाँव-गाँवमें 'भागवत तुंगी' और घर-घर 'भागवत गादी' पाई जाती है। आज भी मृत्यु-शय्याके पास हरिनाम और भागवतका यह अनुवाद सुनाया जाता है। इस भागवतका भी एकादश स्कन्ध अधिक प्रचलित है और कहीं-कही भागवतके नामसे दशम स्कन्ध ही समझा जाता है। जगन्नाथदासने एकादश स्कन्ध तक अनुवाद भी किया था। इसमें भी मूल भागवतसे थोड़ा बहुत अन्तर पड़ जाता है। द्वादश स्कन्ध और त्रयोदश स्कन्ध जोड़कर महादेवदासने इसको पूरा किया था।

उनके तत्व परक ग्रन्थोंमे 'दारुब्रह्म गीता', 'गुप्त भागवत','तुलाभिणा', 'मन शिक्षा', 'अर्थ कोइली' इत्यादि प्रसिद्ध है। इनमें भी वही काय-साधना, ज्ञान-मिश्रा भक्ति, जगन्नाथ माहात्म्य, पिण्ड-ब्रह्माण्डका एकत्व आदि प्रतिपादित हुए है। इनके अनेक सस्कृत ग्रन्थ भी प्राप्त है, जिनमें 'कृष्ण भक्ति कल्पना', 'कृष्णभक्ति कल्पनाफल', 'नित्य गुप्त गीता', 'जगन्नाथ चरिताम्बोधि सारणी' आदि प्रसिद्ध है।

उनके काव्योंमें 'दहिखेल' 'बोले हुँगीत' 'गज स्तुति' 'मृगुणी स्तुति' 'ध्रुवस्तुति' आदि कई छोटी रचनाएँ है। वे सब भक्तिपरक है और कुछमें आर्तोंकी गुहार प्रधान है।

यशोवन्तदास : आपका जन्म ई. सन् १४९१–१४९२ में ओढ़गंमे हुआ था। उनके पिता का नाम जगुमल्लिक (जगन्नाथ मल्लिक) और माताका नाम रेखादेई था। १२ साल की उम्रमें घर छोड़कर उन्होंने भारतके अनेक तीर्थोंका भ्रमण किया और अन्तमे पुरी आए। प्रवाद है कि उन्होंने चैतन्य देवसे दीक्षा ली, किन्तु वे गृहस्थका सा जीवन यापन करते थे। उन्होंने जमींदार रघुरामकी भगिनी अञ्जना देवीसे शादी की थी। उनका कोई पुराण नही मिलता। साधना परक ग्रन्थोंमें 'स्वरोदय लेश' का 'शिव स्वरोदय' नामसे उड़ियामे पद्यानुवाद मिलता है। उसीसे उनकी और उस युगकी धार्मिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने 'प्रेमभक्ति ब्रह्म गीता' लिखी थी, जिसमे स्वर साधनासे समाधि लाभ और समाधि अवस्थामें राधाकृष्णके नित्यरासका दर्शन 'त्रिकुट' पर किया गया है। उन्होंने रास, षष्टिकला और 'भविष्य पुराण मालिका' आदि कई मालिकाएँ भी लिखी है। लेकिन उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'गोविन्द चन्द्र गोता' है। यह उड़ीसामें अत्यंत जनप्रिय है और नाथ योगी लोग 'केन्द्रा' (रावण हत्या) के साथ गा-गाकर भिक्षाटन करते है।

उनके कुछ भजन (निर्गुण भजन) भी प्राप्त हैं।

अनन्तदास : उनका जन्म काल करीब ई. सन् १४९२ था। वे 'शिशु अनन्त' के नामसे प्रसिद्ध है। उनके पिता कपिल और माता गौरी थी। वे सूर्यके उपासक थे। प्रवाद है कि सूर्य देवताने उनको सूर्यनारायण एकाक्षर मन्त्र दिया था और एक हजार श्लोककी शिक्षा दी थी। सूर्यके उपदेशानुसार उन्होंने चैतन्यदेव और नित्यानन्दसे साक्षात्कार किया और नित्यानन्द गोस्वामीसे दीक्षा ली थी। वे योगमिश्रा भक्तिके साधक थे। उनके बहुत कम ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने कई भजन, चौतिशा, स्तोत्र, गरुड़ गोविन्द सवाद, गरुड़ अनन्त सवाद, आगत-चुम्बक मालिका, उपदेबाखर, ठीकबाखर (बाखरमालिका या भविष्यवाणी) और 'हेतु उदय भागवत' एक बड़ा ग्रन्थ लिखा था। 'हेतु उदय भागवत' मे अवधूत जन्म, गोरख योग तत्व, गायत्री तत्व, राधाकृष्ण तत्व आदि वर्णित है। इसमें भी 'संध्या भाषा' का प्रयोग किया गया है।

अच्युतानन्ददास : उनके जन्मकालके विषयमे बहुत मतभेद है। कितनोंके मतमें ई. सन् १५०३, कितनोंके मतमे १४९० और दूसरोके मतमे ई. १४८५ है। उनके पिता दीनबन्धु खुण्टिआ थे और माता पद्मावती थी। उनका जन्म 'तिलकणा' ग्राममे हुआ था और उनकी गादी आज भी कटक जिलेके 'नेम्बाल' में विद्यमान है। उनके दीक्षा गुरुके बारेमें भी मतभेद देखा जाता है। कितने नित्यानन्द और दूसरे सनातन बताते है।

पञ्चसखाओंमें इनकी रचना सबसे अधिक पाई जाती है। 'अणाकार संहिता' में कहा गया है कि :—

छतिश संहिता अठस्तरी गीता वंशानु सप्तबिंशरे।
उप वंशानु द्वादश खण्ड बेनि भविष्य शत खण्डरे॥
गद्य पद्यावली लक्षेक ये ग्रन्थ सबु श्रीकृष्ण महिमा।
तो आगे कहिलुँ बरजकुमार ब्रह्म सारस्वत सीमा॥

अर्थात् उन्होंने ३६ संहिताएँ, ७८ गीताएँ, २७ वंशानुचरितके साथ हरिवंश, १२ उपवंशानुचरित, २०० भविष्य मालिकाएं और एक लाख गद्य-पद्य आदि (जिससे कोइलि, चौंतीसा, टीका, विलास, ओगाल, गुञ्जरी, निर्णय, भजन आदि शामिल है) लिखे थे।

उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। उनके अनेक प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थोंमें 'छाया संहिता','ज्योति सहिता', 'अवाड़ संहिता', 'मन्त्र संहिता', 'यन्त्र संहिता','तन्त्र-संहिता', 'अनाहत संहिता', 'अकलित संहिता' आदि प्रमुख है। प्रकाशित ग्रन्थोंमें पुराणोंमें सात खण्डोंवाला 'हरिवंश' प्रधान है। यह संस्कृत हरिवंशका अविकल अनुवाद नही है, इसमें नामतत्व, निराकार तत्त्व, योगतत्व, सप्त पाञ्चालिक प्रच्छिन्न आदिका व्याख्यान किया गया है। इसमें योगान्त, वेदान्त, सिद्धान्त, नागान्त आदि सम्प्रदायो तथा विभिन्न मठोका उल्लेख भी पाया जाता है। यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। इसमें अच्युतानन्ददास लिखते है :—

"हिन्दु भावे अलेख तुरुक अलेफ ये।
एणु अलेफ तेजि अलेख हिन्दु भजे"॥

यहाँ कबीरका बचन याद आता है :—

हिन्दु भजे अलेख तुर्क भजे अलेफ।

इसके अलावा 'ब्रह्म शंकुलि' 'अधाकार संहिता' 'गरुड़ संहिता' 'छयालीस पटल' आदि अनेक ग्रन्थ है।

उनकी और एक प्रसिद्ध कृति है 'गोपालंक ओगाळ ओ लउड़िखेळ' (गोपालों का आगोटना और लाठी खेल)। ओगालमें सुदामाका प्रश्न और श्रीदामाका उत्तर है।

इसी कालमें जीवनी साहित्यका प्रारम्भ हुआ। दिवाकरदासने पद्यमें 'जगन्नाथ चरितामृत' लिखा, जिसमें पञ्चसखाओंके एक 'अतिबड़ जगन्नाथ दास' की जीवनी दी गई है। इसमें ज्ञानमिश्रा भक्ति या उत्कलीय वैष्णव धर्म प्रतिपादित किया गया है। विभिन्न सम्प्रदायों और शाखाओंके साथ चैतन्यदेव की जीवनी और गौड़ीय सम्प्रदायके अन्य वैष्णवोंके जीवनकी एक झलक मिलती है। दिवाकरदास ई. सन्की षोडश शताब्दीके प्रथमार्द्धके है। सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें ईश्वरदासने 'चैतन्य भागवत' लिखा था।

पञ्चसखाओंकी पम्परामें 'विष्णुगर्भ पुराण' के रचयिता चैतन्यदास 'अणाकार संहिता' के रचयिता नन्ददास, 'सुधारसार गीता' के रचयिता चन्द्रमणिदास, 'परचे गीता' के रचयिता द्वारिकादास प्रमुख हैं। चैतन्यदासने 'निर्गुण माहात्म्य' भी लिखा था। वे खड़िआलके बड़मूल ग्रामके निवासी थे। द्वारिकादासने जगन्नाथदासकी भागवतको भी पूर्ण किया था। 'परचे गीता' योग तत्वका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उन्होंने 'परचे चूड़ामणि', शिव पुराण' आदि भी लिखा था।

इस युगमें और भी अनेक पुराण लिखे गए थे। महादेवदासने इसी कालमें 'मार्कण्ड पुराण', 'विष्णुकेशरी पुराण', 'पद्म पुराण', 'नीलाद्रि महोदय', 'इतिहास पुराण', 'कार्तिक पुराण', 'माघ पुराण', 'आषाढ़ पुराण', 'द्वादशी माहात्म्य' आदि लिखे थे। ये पुराणोंके ठीक-ठीक पद्यानुवाद नही, वल्कि पौराणिक आख्यायिकाओंपर आधारित पुराण हैं। बिप्र सदाशिवका 'बिचित्र हरिवंश' भी इसी कालका है। 'बिचित्र' का अभिप्राय है कि यह विभिन्न छन्दोंमें लिखा गया है और गोपलीला यात्राके उद्देश्यसे लिखित होनेके कारण कुछ गद्यमें संलाप भी आ गए हैं। हलधरदासने 'अध्यात्म रामायण' का पद्यानुवाद भी किया था। गीतगोविन्द का 'रस वारिधि' नामसे वृन्दावनदासका और एक पद्यानुवाद भी मिलता है। इस कालके भजन साहित्यमें सालबेग प्रसिद्ध हैं। वे मुसलमान थे, किन्तु थे वे कृष्ण भक्त। उन्होंने अनेक रसात्मक भक्ति गान लिखे हैं।

यहाँ एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिए। पञ्चसखाओंके समय चैतन्य-देव उड़ीसामें आकर पुरीमें बहुत दिन तक रहे। पञ्चसखाओंने अपना वैशिष्ट्य रखते हुए भी चैतन्य देवकी महिमा स्वीकार कर लिया। धार्मिक सम्प्रदायोंकी गति और साहित्यपर इसका अत्यन्त प्रभाव पड़ा, जिससे कितने ही प्रेम भक्तिके उपासक हो गए। गोदावरी नदीके तटपर रायरामानन्द और चैतन्यदेवका मिलन और संलाप ऐतिहासिक है। रायरामानन्द शुद्ध भक्तिके उपासक थे। उन्होंने 'ब्रजबुलि' में कुछ पदावली लिखी है। 'ब्रजबुलि' उन दिनोंके प्रेममार्गी वैष्णव पद कर्ताओंकी भाषा ही कही जा सकती है। इसलिए उड़ीसामें भी 'ब्रजबुलि' में कितनी ही पदावली पाई जाती हैं। रायरामानन्द भी उसी प्रकारके कवि है। उनके वंशज आज भी पुरी जिलेके 'खोर्द्धा' अञ्चलमें रहते है। शिखी महान्तिकी बहन माधवी दासी भी इसी प्रकारकी कवयित्री है। उनके अनेक पद बंगीय वैष्णव पदावलीमें पाये जाते है। उनके कई उड़िया पद भी पाये गए है। 'ब्रजबुलि' की परम्परामें दामोदरचम्पति राय, चान्द आदि कवि आते हैं।

सिर्फ 'ब्रजबुलि' ही नहीं, शुद्ध उड़ियामे भी कुछ भक्त कवि हुए थे। दीनबन्धुदासके 'छान्द चारु प्रभा' और 'राधाकृष्ण लीलामृत' भक्तिसे आप्लावित है। रामचन्द्रदेवने भी इसी परम्परामें 'नवानुराग' 'बंशीचोरी' आदि लिखी थी।

यह तो धर्म-धाराकी प्रवृत्ति हुई। आदि युगके अर्जुन दासकी 'रामविभा' की काव्य-धारा भरी नहीं थी। इस युगमें काव्यका भी विकास कम नहीं हुआ था। इस समयके काव्य दो प्रकारके पाये जाते है--एक पौराणिक कथावस्तुपर आधारित और दूसरा लौकिक या काल्पनिक कथावस्तु पर।

शिशुशंकरदासका 'उषाभिलाष', कपिलेश्वरदासकी 'कपटकेलि', हरिदासकी 'चन्द्रावती विलास', कार्तिकदासकी 'रुक्मिणी विभा' आदि कई पौराणिक काव्य हैं। 'उषाभिलाष' काव्यमें उषा-अनिरुद्धका प्रेम-परिणय वर्णित है। उनकी स्वप्नोत्थित नायिकाके वर्णनका प्रभाव उपेन्द्रभञ्जपर भी पड़ा है। 'कपटकेलि' का विषय है--राधाका मान भञ्जन करनेके लिए श्रीकृष्णका नारी वेश-धारण या कपट वेशमें केलि। इस काव्यके प्रत्येक छन्द (सर्ग) के प्रारम्भमें 'गाहा' दी गई है। 'चन्द्रावती विलास' में दुर्योधनकी पुत्री चन्द्रावती और श्रीकृष्णके पुत्र शाम्बका गुप्त प्रणय और विवाह वर्णित है। इसमें परवर्ती छन्दमें वर्णित विषयकी सूचना पूर्ववर्ती छन्दके अन्तमें दी गई है। 'रुक्मिणी विभा' (विवाह) के नामसे ही इसकी कथावस्तु स्पष्ट है। शिशुपाल वध इसका उपजीव्य है। उनका एक दूसरा काव्य मिलता है 'नवानुराग', जिसका विषय है राधा-कृष्णका प्रथम मिलन।

लौकिक या काल्पनिक कथावस्तुपर आधारित काव्योंमें प्रतापरायकी 'शशिसेणा', रामचन्द्र पटनायकको 'हारावती', श्रीधरदासकी 'काञ्चनलता', रघुनाथ हरिचन्दनकी 'लीलावती' आदि प्रधान है। 'शशिसेणा' का आधार एक लोक कथा है। इसका नायक मन्त्रीपुत्र अहिमाणिक्य और नायिका राजपुत्री शशिसेणा है। विद्यालयमें ही उनका प्रेम शुरू हुआ था और अनेक विपत्तियाँ झेलकर अन्तमें उनका मिलन हुआ था। 'हारावती' काल्पनिक कथावस्तु पर आधारित है और शृंगार रस प्रधान है। इसका नायक राजपुत्र नहीं है। वह एक साधारण युवक है। और नायिका अभिजात वंशकी नहीं, बल्कि एक गुड़िआनी (मिठाई बनानेवाली)की लड़की है। यही इसका एक प्रधान वैशिष्ट्य है। 'काञ्चनलता' एक काल्पनिक काव्य है। 'लीलावती' की कथावस्तु तो काल्पनिक है ही, साथ-साथ ही उसमें संगीतके ताल-लय का भी प्रयोग किया गया है। रघुनाथ हरिचन्दन एक अच्छे संगीतज्ञ थे।

(ख) उत्तर मध्य युग :

उत्तर मध्य युगको रीति काल भी कहा जा सकता है। भक्ति कालके बाद रीति काल आता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें भक्ति कालकी धर्म-धारा बिलकुल रुक गई। ज्ञानमिश्रा और श्रद्धा-भक्ति अथवा उत्कलीय और गौड़ीय दोनों धाराएँ चलती रहीं। अवश्य ही प्रेमभक्तिकी धारा प्रबल होने लगी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु पूर्वमध्य युगके अन्तिम कालमें रीति कालका सूत्रपात हो गया था। इस रीति कालका हिन्दीके रीति कालसे बहुत सादृश्य

है। इस कालमें पौराणिक और काल्पनिक दोनों प्रकारके काव्य पाये जाते हैं। इस युगके सभी काव्योंमें कथावस्तु और नायक-नायिका एक-से हैं। सबमें आकस्मिक दर्शन, मिलन, विरह, अनुचिन्तन एवं पुनर्मिलन वर्णित हैं। नायिकाएँ निमित्त मात्र हैं। वर्णन प्रधान है। नायिकाओंका, देवियोंका, राधा और सीता तक का नख-शिख वर्णन किया गया है। शृंगार रसका बाहुल्य है। कहीं-कहीं शृंगार अश्लील भी हो गया है। सब प्रकारके शब्दालंकारोंका और क्लिष्ट शब्दोंका यथेष्ट प्रयोग किया गया है। कोष ग्रन्थ, लक्षण ग्रन्थ, साहित्य शास्त्र, काम शास्त्र, और अन्यान्य शास्त्रोंकी साहित्य सर्जनामें सहायता ली गई है। नायक-नायिका लक्षण ग्रन्थोंका कहना ही क्या। उपेन्द्र भञ्जने इसको पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। इसलिए इस कालका नाम ही 'भञ्जकाल' पड़ गया। वस्तुतः यह काल उनके पहलेसे ही शुरू हो गया था।

धनञ्जय भञ्ज (ई. १६३७ से १७०१) : धनञ्जय भञ्ज उपेन्द्र भञ्जके पितामह थे। वे घुमसरके राजा थे। उन्होंने रामायण पर आधारित 'रघुनाथ विलास' और काल्पनिक कथावस्तुपर आधारित 'त्रिपुर सुन्दरी','मदन मञ्जरी','रत्न-मञ्जरी','अनङ्ग रेखा', 'इच्छावती' आदि काव्य लिखे थे। उनपर रीति कालकी छाप स्पष्ट है। उनके 'रत्न परीक्षा' 'अश्व परीक्षा', और 'गज परीक्षा' ये तीन लक्षण ग्रन्थ और 'चौपदी भूषण आदि संगीत ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। उपेन्द्र भञ्जपर उनका प्रभाव स्पष्ट है। कहा जाता है कि 'रघुनाथ बिलास' को टक्करमें 'बैदेहीश बिलास' लिखा गया था।

दीनकृष्णदास : वे द्वितीय मुकुन्द देव (१६५१–१६८६) तथा दिव्य सिंह देव (१६२६–१७१३) के समयमे जीवित थे। वे रीति-कवि थे। उन्होंने धार्मिक काव्यमें रीतिका और धर्ममें उत्कलीय और गौड़ीय मतवादोंका समन्वय किया था। उन्होंने 'रस कल्लोल' काव्य लिखा था। जिसकी प्रत्येक पक्तिका प्रथम अक्षर 'क' है। यह राधाकृष्ण परक एक अपूर्व काव्य है। 'क' आद्य नियमकी रक्षा करते हुए भी यह एक अत्यन्त ललित मधुर काव्य है। इसमें कविका उदात्त व्यक्तित्व स्पष्ट है। वे कविके बारेमे कहते है :—

कबिया करे मुर्खकु स्तुति
एथिरु बड़ नाहिँ विपत्ति,

और कविताके बारेमें कहते है :—

कबि होइ करुथिब निर्मल कबित्व।
कर्ण देइ शुणु थिब रसिक पण्डित॥
किञ्चित करि आस्वाद करुथिब लाहा।
कहे कृष्ण कि मधुरे लेखिबि मुं एहा॥

इसके अलावा इनकी 'रत्नगीता', 'रसबिनोद', (तत्वपरक) 'प्रस्ताव सिन्धु' (उपदेश परक), 'नावकेलि', 'अलंकारकेलि' और 'आर्त्त त्राण-चौतीशा' आदि अनेक कृतियाँ पाई जाती है।

भूपति पण्डित: वे सारस्वत ब्राह्मण थे और तिरहुत होकर दिव्य-सिंहके समयमें उड़ीसा आये थे। वे चैतन्यदासुसे मन्त्र लेकर उड़ीसी सम्प्रदायमें दीक्षित हुए थे। उड़िया अच्छी तरहसे सीखकर जगन्नाथदासके भागवतके समान नवाक्षरी वृत्तमें 'प्रेमपचामृत' लिखा था, जिसमें कृष्णकी लीला वर्णित है। यह भी उड़ीसामें अत्यन्त प्रचलित है। उनका 'भूपति चौतीशा'के नामसे एक चौंतीशा भी मिलता है।

देव दुर्लभ दास: उनकी रहस्य मञ्जरीपर ज्ञानमिश्राकी अपेक्षा श्रद्धा-भक्तिका प्रभाव अधिक है। उन्होंने अष्टदल कमल, केशर और महायोग पीठमें स्थित जगन्नाथजीकी स्तुति करते हुए भी गोपियों का और गोपियोंमें भी राधाका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया है। उनके मतमे गोपियोंके प्रसादसे ही प्रेम-भक्ति मिलती है। इनका काल निश्चित नहीं है।

वृन्दावती दासी और उनका परिवार पूर्ण रूपसे गौड़ीय सम्प्रदायके अनुयायी था। उनके पति चन्द्रशेखरदासने १६९५ ई. में 'कृष्ण तत्व चन्द्रोदय', पुत्र भीमदासने 'हरिभक्त चन्द्रोदय' और 'भक्ति रत्न माला' और उनके पौत्र कृपासिंधुदासने १६९८ में 'उपासना चन्द्रोदय' लिखा था। उन्होंने स्वयं 'पूर्णतम चन्द्रोदय' लिखा था। इसमे श्रीकृष्ण द्वारिकामे पूर्ण, मथुरामे पूर्णतर और व्रजमें पूर्णतम प्रतिपादित किए गए हैं।

लोकनाथ विद्याधर: वे वाणपुरके अधिवासी थे। उन्होंने 'सर्वांग सुन्दरी' 'पद्मावती परिणय', 'चित्रकला', 'रसकला', 'चित्रोत्पला', 'परिमला' और 'वृन्दावन विहार लिखा था। वृन्दावन विहार एक पौराणिक काव्य है और उसमे कृष्ण लीला वर्णित है। बाकी सभी काल्पनिक काव्य है। उनके काव्योंमे श्लेष, यमक, अन्तर्लिपि, बहिर्लिपि तथा गोमुत्रादि बन्धोंका समावेश है और उनमें रीति कालके सब लक्षण विद्यमान हैं। 'पद्मावती परिणय' ई. १७०५ में पूर्ण हुआ था।

त्रिविक्रम भञ्ज: उनकी 'कनकलता' भी इसी प्रकारका एक काव्य है। इसपर रीति कालकी छाप स्पष्ट है। वे उपेन्द्रभञ्जके चाचा थे।

उपेन्द्र भञ्ज: वे भी उपर्युक्त पृष्ठ भूमिमें पैदा हुए थे। उनका जन्म ई.१६८५ में और मृत्यु ई. १७२५ में हुई थी। वे भी घुमसर राज परिवारके थे और धनञ्जय के पौत्र थे। पहले कहा गया है कि पौत्रपर पितामहका यथेष्ट प्रभाव पड़ा था। दीनकृष्णका भी उनपर प्रभाव कम न था। उनका प्रसिद्ध 'बैदेहीश बिलास' काव्य धनञ्जय भञ्जके 'रघुनाथ बिलास' के टक्करमें लिखा गया था। नामसे स्पष्ट है कि दोनोंके विषयवस्तु एक ही है। किन्तु नाम रखा गया 'रघुनाथ

बिलास' की जगह पर 'बैदेही बिलास'। नामके समान ही यह सारा काव्य 'ब'कारादि नियमसे लिखा गया है। हर एक पंक्तिमें आदिमें बकार आता है, जैसा कि दीनकृष्णदासके 'रसकल्लोल' में 'ककार' से पंक्तियाँ शुरू होती हैं। सिर्फ इतना नहीं इसके प्रत्येक छन्द (सर्ग) में बाइस, बत्तीस आदि बकारादि संख्याके पद भी आए है। उन्होंने 'रसकल्लोल' के टक्करमें एक 'कला कौतुक' लिखा था, जिसमे नामके समान आदि और अन्त दोनोंमे 'क' है।

उनके अन्य पौराणिक काव्योंमें 'सुभद्रापरिणय', 'ब्रज लीला' 'कुञ्ज विहार' 'रामलीलामृत', 'अबनारसतरङ्ग' आदि मुख्य है। 'सुभद्रापरिणय' में 'स' कारादि नियमका पालन किया गया है। 'अवनारसतरङ्ग' सम्पूर्ण काव्यमें'वना' या 'इ' कारादि मात्रा कोई नहीं है। उनके काल्पनिक काव्योंमें मुख्य है—'लावण्यवती' 'कोटिब्रह्माण्ड सुन्दरी', 'रसिकहारावली,' प्रेम सुधनिधि,' 'भाववती', 'शोभावती' 'इच्छावती', 'कलावती' आदि। उनका एक आलंकारिक ग्रन्थ है 'रसपञ्चक', जिसके पाँच परिच्छेदोंमें 'र''स''प''च''क' पाँच अक्षर आदिका नियम रक्षित है। चित्र काव्य 'बन्धोदय' एक चित्र और बन्ध काव्यका अच्छा नमूना है। उन्होंने एक कोप ग्रन्थ भी लिखा था। 'गीता विधान' में कान्त, खान्त आदि अन्त्यक्षरोंको लेकर शब्दोंको सजाया गया है। एतदतिरिक्त इनकी 'छान्दभूषण', 'षड ऋतु' आदि अनेकानेक कृतियाँ और रचनाएँ पाई जाती हैं।

इनकी रचनाओंमें रीति कालके सभी लक्षणोंका सम्पूर्ण विकास हुआ है। कथा-वस्तुमें हिन्दीके रीतिकालीन काव्यके साथ काफी समानता है। क्लिष्टता और कूटोक्ति बहुत मात्रामें है। कहीं-कहीं पढ़नेमें पद अत्यन्त सरस और सरल लगते हैं। किन्तु उनमें कोई भीतरी बात छिपी रहती है। एक पद लीजिए। स्वप्नमें लावण्यवतीके साथ चन्द्रभानका संगम होनेके बाद चन्द्रभान चला जाता है और लावण्यवतीकी नींद टूट जानेपर उपेन्द्र भञ्ज कहते है :—

चेति चातुरी चाँहिला निशि नाशे पाशे नहिँ बिव्य तरुण,
मारिहृदे हात नाथ नाथ बोलि अति उच्चेकरे कारुण्य।
खोजे अबीरे! चेतना हत से विधिरे,
शेय लेइटाइ कवरी फिटाइ कर भरि कुच सधिरे॥

दृश्य बड़ा करुण है! पद सरस और ललित है। किन्तु प्रश्न उठता है कि लावण्यवती चन्द्रभानको ढूँढ़ती है तो शय्या क्यों उलटती है? कबरी क्यों खोलती है और कुच-सन्धिपर हाथ क्यों फेरती है? इसका अभिप्राय है कि नायकका नाम चन्द्रभानु है अर्थात् नायक चन्द्र और भानु है। इसलिए क्या वे तुला राशिमें चले गए? शय्यामें भी तुला राशि है, क्या उसको राहु निगल गया? केश-भार राहुके समान काला है, क्या वे अस्ताचलमें चले गए? कुच अस्ताचल पर्वतके समान उच्च हैं। इस प्रकार के उनके अनेक कूट पद हैं।

सचमुच रीति रचनामें वे अद्वितीय हैं। इसलिए इस युगको 'भञ्ज युग' कहा जाता है।

धन भञ्ज: वे भी घुमसरके इसी भञ्ज घरानेमें पैदा हुए थे और वे धनञ्य भञ्जके छोटे भाई गोविन्द भञ्जके लड़के थे। उन्होंने भी 'रसनिधि' और 'त्रिलोक-मोहिनी' रीति काव्य लिखा था।

रीति मार्गके सिवाय अन्य धाराएँ भी प्रवहमान थीं। विश्वनाथ खुण्टिआने बिचित्र महाभारतके समान विभिन्न छन्दोंमे अत्यन्त सरल वाणीमें 'बिचित्र रामायण' लिखी थी, जो अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। सिर्फ आजकल ही नहीं उन दिनों भी शिशुओं और प्रौढ़ोंके लिये साहित्य सृष्टिकी जाती थी। बिचित्र रामायण उसी प्रकारकी सृष्टि है। दनाई दासकी 'गोपी भाषा' भी इसी प्रकार का साहित्य है। कृष्णके मथुरा गमनके बाद गोपियोंकी करुण अवस्था इसमें बड़े मर्मस्पर्शी ढंगसे वर्णित है। इसकी भाषा सरल, और मधुर है। इसमें कुछ अश्लीलता भी आ गई है। पुराण धारामें पिताम्बरदासका 'नरसिंह पुराण' आता है। यह मूल रचनाका अविकल अनुवाद नहीं है, इसमें बहुत अन्तर है। जीवनी धारामें रामदासकी 'दार्ढ्यता भक्ति' आती है। 'भक्त माल' के समान इसमें भक्तोंकी जीवनी दी गई है— भगेलिया जुलाहा कबीर की भी।

पूर्वोक्त आलोचनासे पता चलता है कि मध्यकालके उड़िया साहित्यमें दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट थीं, एक धर्म की ओर दूसरी रीतिकी। साथ-साथ यह भी लक्ष्य करनेकी बात है कि पञ्चसखाओंके समय चैतन्यदेव उड़ीसा आये थे और धीरे-धीरे उनका भी सम्प्रदाय जड़ जमाने लगा था। काल क्रममें उड़ीसा वैष्णव धर्मका स्थान, गौड़ीय वैष्णव धर्म लेने लगा। इसलिए मध्यकालीन साहित्यके बाद उड़िया साहित्यमें गौड़ीय वैष्णव धर्म और रीतिकालीन लक्षण दोनोंका समन्वय देखनेमें आता है। इस कालमें काव्य प्रायः राधा-कृष्ण प्रेम परक है और कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गई है। किन्तु राधाकृष्णकी लीलाको अश्लील नहीं कहा जा सकता। उनमें प्रधान प्रधान कवि हैं—सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा (साधुचरण दास)। वे नयागढ़ रियासतके भिखारी पड़ामें पैदा हुए थे और पुरीके राजा वीर किशोरदेव (१७२७ से १७८३) से उनको 'कविसूर्य ब्रह्मा' की उपाधि मिली थी। उन्होंने 'कीर्तन उज्वल' के रचयिता बाबा किशोरदाससे दीक्षा ली थी और उनका दीक्षा नाम था साधुचरण दास। वे गौड़ीय सम्प्रदायके अनुयायी थे। 'वैदेहीश विलास' के समान उन्होंने 'व' आद्य नियमसे 'विश्वम्भर विलास' काव्य लिखा था। उन्होंने 'प्रेम तरंगिणी,' 'प्रेमलहरी,' 'प्रेमचिन्तामणि,' 'ललित लोचना', 'स्मरदीपिका' 'युगलरसामृत लहरी', 'युगलरसामृत भँवरी' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे थे। 'युगलरसामृत लहरी' के द्वितीय छन्दमें (सर्ग) प्रत्येक पदके प्रत्येक पंक्तिके आदिमे 'क' 'का' 'कि' आदिके बाद 'अ', 'आ' आदि सरणाद

नियम और प्रत्येक पंक्तिके अन्त्य वर्ण, रेफ युक्त वर्णका नियम पालन किया गया है। उनके काव्योंमें राधाकृष्णका प्रेम ही मुख्यतया वर्णित है। वीर किशोरदेवके पुत्र श्यामसुन्दरदेवने 'अनुराग कल्पलता' लिखी थी, जिसमें 'अकारादि' नियम पालित है। यह भी राधाकृष्ण परक कृति है।

भक्त चरणदास : उनका 'मथुरा मंगल' उड़ीसामे अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें कृष्णके कंस वध तककी लीला वर्णित है और गोपियोंका विच्छेद और विरह वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। रीति काल का स्पर्श रहते हुए भी भाषा सरल है। इसमें ज्ञानकी अपेक्षा प्रेमके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया गया है। उनका 'मनबोध चौतीशा' भी मोहम्मदके समान चुभनेवाली भाषामें लिखा गया है। यह भी अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इनके अलावा 'कला कलेवर,' चौतीशा, 'मनशिक्षा' आदि और भी उनकी कई रचनाएँ पाई जाती है।

अभिमन्यु सामन्त सिंहार (१७५७–१८०७): उनके शिक्षा और दीक्षा गुरु साधु चरणदास (सदानन्द कविसूर्य) थे। वे राजपूत थे और उनके पूर्व पुरुष पश्चिमसे आए थे। उनके 'विदग्ध चिन्तामणि'में माधुर्य, भक्ति और रीति का अपूर्व समन्वय है। दीनकृष्णदासके 'रसकल्लोल' और उपेन्द्रभञ्जके 'वैदेहीश विलास' के साथ इसकी गणना हो सकती है। रीति कालकी सारी विशेषताएँ इसमें विद्यमान है, साथ-साथ 'विदग्ध माधव', 'ललित माधव' आदिमे प्रतिपादित प्रेम-माधुर्य और काव्य—माधुर्यसे भी यह रचना आप्लावित है।

कवि जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमें उन्होने 'प्रीति चिन्तामणि','सुलक्षणा', 'रसवन्ती', 'प्रेमकला', 'रसकला' आदि कई काल्पनिक काव्य और कुछ गान भी लिखे थे।

इस कालमें कई संगीत या पद्यावली कर्त्ता भी हुए है, जिनमें वनमाली, पट्टनायक, गौरचरण अधिकारी, गोपालकृष्ण पट्टनायक प्रसिद्ध हैं। राधा कृष्ण प्रेम ही इन सबके काव्यके उपजीव्य है। गोपाल कृष्ण ई. १८५६ तक जीवित थे। कोटिपुअ उडीसी नाचमें उनके पद बहुत गाये जाते है।

इसी कालमे पिण्डिक हरिचरणने 'वसन्तरास' लिखा था। जिसकी भाषापर 'ब्रजबुलि' का प्रभाव दिखाई देता है। यह भी संगीतमय है। इस संगीतकी परम्परामें बलदेवरथ कविसूर्य आते हैं। उनका चम्पू अत्यन्त संगीतमय और प्रसिद्ध है। उन्होंने 'किशोर चन्द्रानन', 'चम्पू रत्नाकर' आदि चम्पू काव्य लिखे है। 'किशोर चन्द्रानन' चम्पूका गद्यांश संस्कृतमें और पद्यांश उड़िया संगीतमें लिखा गया है। चौतीशाके समान प्रत्येक गीतकी प्रत्येक पंक्तिके आदिमें 'क', 'ख', 'ग' आदिका नियम रक्षित है। ये चम्पू गीत भी 'कोटिपुअ' में अत्यन्त प्रचलित हैं। उनकी मृत्यु ई. १८६८ मे हुई थी। उन्होंने 'चन्द्र कला' नामक एक काल्पनिक काव्य भी लिखा था। इससे पता चलता है कि प्रेम भक्ति और रीतिका सब जगह समिश्रण नहीं हो पाया था; बल्कि विशुद्ध रीति काव्य भी लिखे जाते थे।

विशुद्ध रीति परम्परामें यदुमणि महापात्र भी आते हैं। रीति लक्षणानुसार उनके 'प्रबन्धपूर्णचन्द्रोदय' में श्री कृष्ण और रुक्मिणीका विवाह वर्णित है। ये हास्य प्रिय भी थे और 'यदुमणिरहस्य' नामसे उनकी हास्य पूर्ण रचनाओंका एक संग्रह पाया जाता है। उनका जन्मकाल ई. १८१० और मृत्यु काल ई. स. १८५६ था।

इस धारामें प्रधानतया दो व्यक्तिक्रम पाये जाते हैं–एक ब्रजनाथ बड़जेना और दूसरे भीम भोई। ब्रजनाथके दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं–'समरतरंग' और'चतुर्विनोद'। समर-तरंगमे तत्कालीन एक ऐतिहासिक घटना––नागपुरके चिमनाजी बापूके साथ ढेंकानालके राजा त्रिलोचन महेन्द्र बहादुरके युद्धका वर्णन निराले ढंगसे किया गया हैं। इसमें हास्य रसका भी समावेश है। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। 'चतुर्विनोद' एक हास्य-रस प्रधान काव्य है, और वह भी गद्यमें। चतुर शब्दमें श्लेष है––चतुर या पण्डितोंका विनोद, जिसके चार भेद किये गये हैं–हासविनोद, रसविनोद, नीतिविनोद और प्रीति विनोद। उनका 'गुण्डिचाविजे' नामका एक काव्य मिलता है। यह हिन्दीमे सोरठ, रागमें लिखा गया है। संभवतः उन दिनों भी हिन्दी राष्ट्रभाषा थी। उन्होंने कई रीति काव्या भी लिखे थे–– 'अ' कारादि नियमसे 'अम्बिका विलास' 'श' कारादि नियमसे 'श्यामरामोत्सव' काल्पनिक काव्य, केलिकला निधि विलक्षणा आदि। उनका जन्म ई. १७३० में और मृत्यु शायद ई. १७९५ में हुई थी।

भीम भोई जन्मान्ध थे और जातिके कन्ध (आदिवासी)। वे कुम्भिपटिआ या महिमा धर्मके अनुयायी थे और महिमा गोसाई के उपासक। वे निरक्षर थे, लेकिन उन्होंने जनताकी सरल और सबल भाषामें स्तुति चिन्तामणि, ब्रह्म निरूपण गीता और अनेक भजनोंकी रचनाकी थी। उनकी रचनाओंमें महिमा धर्मके अनुसार निराकार पुरुषका प्रतिपादन किया गया है। वे सचमुच प्रत्यादिष्ट और प्रज्ञाचक्षु थे। उनका काल है ई. १८६०–१८९५। इसलिए रीति कालमे उनको नही रखना चाहिए। लेकिन साहित्य-प्रवृत्तिकी दृष्टिसे वे 'बौद्ध गान ओ दोहा' और पञ्चसखाकी परम्परामें आते है, न कि आधुनिक कालमें। इसलिए उनको यहीं स्थान दिया गया है।

आधुनिक युग :

मध्य युगमे मुगल काल (ई.१५६८–१७७५) और मरहठा काल (ई.१७७५–१८०३) तथा बादमे ब्रिटिश काल शुरू हो जाता है। अँग्रेज उड़ीसामे ई. स. १८०३ मे आए और वहींसे आधुनिक युग प्रारम्भ होता है। आधुनिक युगका प्रवर्तन प्रायः सब प्रान्तोंमें एक-सा हुआ है। परिस्थितिके प्रभेदसे कहीं आगे और कहीं पीछे, कहीं कम तो कहीं ज्यादा।

ई. सन् १८०३ में अँग्रेजोंके आ जानेपर तथा मिशनरी लोगोंके धर्म प्रचार को बढ़ावा देनेके लिए, रामपुरसे बाइबिलका उड़िआ अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अँग्रेजी उड़िया अभिधान और अँग्रेजोंमें उड़िया व्याकरण भी लिखा गया। शिक्षा की नीति भी बदल दी गई और एक नव्य शिक्षित समाज

उभरकर सामने आया। अँग्रेजी पढ़ने वालों को नौकरीमें सुविधाएँ दी जाने लगीं। नाना प्रकारसे लोगोंको अँग्रेजी शासन और अँग्रेजी शिक्षाके प्रति आकृष्ट किया गया। उसी कालमें उड़ीसामें भीषण अकाल पड़ा, जिससे ईसाई धर्मके विस्तार और प्रचारको बहुत सहारा मिला। इसका सञ्चालन बंगालसे होता था। मिशनरी लोग वहींसे आते थे। उड़ीसापर अधिकार जमानेके पहले बंगाल अँग्रेजोंके शासनाधिकारमे आ चुका था। बंगालमें राजा राममोहन रायके प्रभावसे वहाँ अँग्रेजी शिक्षाका प्रसार और उसके फलस्वरूप एक नव्य शिक्षित समाजकी सृष्टि हो चुकी थी। उसके अनुरूप नये साहित्यका आविर्भाव यहाँ भी हुआ। लोग आकृष्ट हुए और उसी प्रकारके एक समाजकी सृष्टि हुई। इसके मूलमें अँग्रेजी भाषा और आधुनिक पद्धतिकी शिक्षा थी। इसलिए जो काम पहले मिशनरी लोगोके हाथोंमें था, उसीको उड़ीसाके बंगाली, मराठी और उड़िया लोग भी करने लगे। यह नूतन शिक्षाका काल था और यह करीब ५० साल तक चलता रहा। इसलिए इसको पाठ्यपुस्तक काल भी कहा जा सकता है। अँग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे अँग्रेजोंके आचार, व्यवहार और साहित्य के प्रति भी लोग आकृष्ट हुए, और यहाँके साहित्यमें एक विप्लव आया, किन्तु वे प्राचीन प्रान्तीय साहित्य और सस्कृत तथा फारसी साहित्यसे सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न नहीं हुए। हिन्दी साहित्यका भी थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा। उसी कालके प्रधान कवि राधानाथ राय है।

राधानाथ राय : उनके पूर्व पुरुष बंगाली थे। उनका जन्म ई. १८४८ में और देहान्त ई.१९०८ में हुआ था। उनकी शिक्षा प्रवेशिका परीक्षा तक ही हुई थी। वे पहले शिक्षक थे और बादमें विद्यालय निरीक्षक हुए। उन्होंने कई पाठ्य पुस्तकें भी लिखी थीं, किन्तु वे अपने काव्यके लिए प्रसिद्ध हैं। उनपर शेक्सपियर, मिल्टन, वाल्टर-स्काट आदिका प्रभाव स्पष्ट है। उन्होंने पिर्डमस और थिसेके आधारपर 'केदार गौरी' और अटलैन्ट्स के आधार पर 'उषा' आसेचाइल्सके अगामेमनके आधारपर 'पार्वती' (अपूर्ण) काव्य लिखा था। किन्तु ग्रीक कहानियोंपर आधारित होनेपर भी उनके नाम इस प्रकार बदल दिए गए है और उड़ीसाके स्थानों, उसकी नदियों पहाड़ों और भूगोलको इस प्रकार जोड़ दिया गया है कि उनमें विदेशीपन झलकता ही नहीं। सचमुच वे अत्यन्त कुशल शिल्पी है। 'चिलिका' उनका एक खण्ड काव्य है और उसमे उनका देशात्मबोध और दुखात्मबोध एवं सौन्दर्यबोध स्पष्ट है। उन्होंने 'नन्दकेश्वरी', 'ययातिकेशरी' आदि कुछ ऐतिहासिक काव्य भी लिखे है। वे सब उड़ीसाके इतिहासपर आधारित हैं। महायात्रा अमित्राक्षर छन्दमे लिखित प्रथम उड़िया महाकाव्य है। इसपर मिल्टनका प्रभाव स्पष्ट है। इसकी भाषा बड़ी ही उद्दीप्त है। इसमें युधिष्ठिरका स्वर्गारोहण वर्णित है। उन्होंने मेघदूत और तुलसी स्तवकके नामसे तुलसी पदावलीका

उड़ियामें पद्यानुवाद भी किया है। उन्होंने पौराणिक रीतिसे बेणीसंहार लिखा था। इसके अलावा 'दुर्योधनका रक्तनदी संतरण' 'शिवाजीकी उत्साहवाणी' आदि कई फुटकर कविताएँ भी लिखी हैं। १८९६ ई. में बारबारी किलेमें अनुष्ठित दरबारको लक्ष्य कर उन्होंने 'दरबार' नामसे एक व्यंगात्मक कविता भी लिखी थी। उसमें उपाधि पाने वालोंको व्यंग करते हुए, अँग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे कुपथगामी लोगोंकी खिल्ली उड़ाई गई है। 'इतालीय', 'युवा विवेकी' आदि उनके कुछ गान भी पाए जाते हैं, किन्तु उसे गद्य नहीं कहा जा सकता। पद्यकी भाषा और शैलीमें उन्होंने एक युगान्तरकारी परिवर्तन किया। आधुनिक युगके वे स्रष्टा माने जाते हैं। उनकी रचनाएँ 'राधानाथ ग्रन्थावली' के नामसे छपी हैं।

मधुसूदन राव (ई. १८५३–१९१२): उस कालके एक और यशस्वी कवि थे। उनके पूर्व पुरुष मराठे थे। उन्होंने एफ. ए. तककी शिक्षा ग्रहण की थी और राधानाथ रायके समान पहले शिक्षक होकर बादमें स्कूल इन्सपेक्टर हुए। किन्तु प्रकृतिसे वे शिक्षक ही थे। उन्होंने अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखीं और उसी प्रसंगमें अनेक कविताएँ भी। उनके गीत और कविताएँ उड़िया साहित्यमें एक प्रमुख स्थान रखती हैं। वे ब्रह्मसमाजी थे। अतः उनकी कविताओंका प्राण था आनन्दमयता, भक्तिभाव और ईश्वर प्रेम। इसलिए वे भक्त कविके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उनकी 'जीवन चिन्ता', 'आकाश प्रति', 'ऋषि प्राणे', 'देवावतरण', 'हिमाचले', उदय उत्सव', 'पद्मध्वनि' आदि कविताओंमें ये भाव स्पष्ट हैं। उनकी कविताओंमें देशात्मबोध की भी छाप स्पष्ट है। उन्होंने चतुर्दशपदी (Sonnet) भी लिखी थी।

उड़ियाका गद्य भी उनका ऋणी है। गद्यकी भाषाको उन्होंने परिमार्जित रूप दिया और प्रबन्ध साहित्यका प्रवर्तन किया। उन्होंने 'बाल रामायण', 'उत्तर रामचरित' और कुछ अँग्रेजी कविताओंका अनुवाद भी किया था। 'अलेक्जेन्डर सेलकार्क' नामक अँग्रेजी कविताका "निर्वासित का विलाप" नामसे अत्यन्त सफल अनुवाद किया है। उनकी रचनाओंका संग्रह एक ग्रन्थावलीमें छपा है।

रामशंकर राय: वे विशेषकर नाटककारके रूपमे प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'प्रेमतरी' नामसे एक गाथा काव्य लिखा था। उनका 'विवासिनी' एक उपन्यास भी उपलब्ध है, जिसमें मरहठाकालीन उड़ीसाका समाज चित्रित है। उसके पहले 'सौदामिनी' नामसे एक उपन्यास 'मधूप' मासिक पत्रिकामें धारावाहिक रूपसे प्रकाशित होता था। किन्तु पत्रिकाका प्रकाशन बन्द हो जानेके कारण यह अधूरा ही रह गया और शेष अंश खो भी गया। उनका एक और उपन्यास 'उन्मादिनी' का कुछ अश 'इन्द्रधनु' पत्रिकामें प्रकाशित हुआ था, किन्तु थोड़े ही दिनोंमें पत्रिका ही बन्द हो गई। जो कुछ भी हो वे उड़ीसाके प्रमुख उपन्यासकार माने जाते हैं। बंगला नाटकोंका अभिनय देखकर उनकी दृष्टि नाटककी ओर आकृष्ट हुई। लोग कहते थे कि उड़ियामें नाटक सफल हो ही

नही सकता, किन्तु उन्होंने पुरुषोत्तमदेवके चरित--लेखनमें हाथ लगाया और 'काञ्चकावेरी' नाटक लिखा। इसका अभिनय सफल हुआ, जिससे उत्साहित होकर और लोग भी नाटक लिखने लगे। उन्होंने ऐतिहासिक, समाजिक और पौराणिक नाटक, गीति नाटक, प्रहसन तथा यात्रा आदि विषयोंपर भी लिखे है। उनके नाटक हैं--'काञ्चकावेरी', 'बनमाला', 'राम बनवास', 'कंसवध', 'विस्मोदक', 'युग धर्म' 'काञ्चनमाली,' 'चैतन्य लीला', 'लीलावती', 'रामाभिषेक', 'विश्व-यज्ञ' (गीति नाटच), 'कलिकाल' और 'बुढ़ावर' प्रहसन है तथा 'बड़लोक' एक यात्रा है। उन्होंने हिन्दुस्तानी राग रागिनियोंका नाटकोंके गानोंमें सफल प्रयोग किया है। उन दिनों जातीयताका उन्मेष हो चला था तथा साथ ही साथ समाज सुधारकी भावना भी चल रही थी। ये दोनों उनकी कृतियोंमें प्रतिफलित है। किन्तु वे समाज सुधार आर्य सस्कृतिके परम्परानुसार चाहते थे, न कि अँग्रेजी शिक्षाकी अन्ध अनुकृति पर।

इसी कालमे उमेशचन्द्र सरकारने 'पद्माली' नामक उपन्यास लिखा था। इनके अलावा मणिचरण महापात्र, चन्द्रमोहन महारणा, बामण्डाके राजा सुढ़ल देव आदि और कई लेखक हो गए है।

आधुनिक कालके पूर्वोक्त प्रथम पर्यायमें अँग्रेजोंने अपना अधिकार दृढ़ कर लिया और इसी उद्देश्यसे अँग्रेजी शिक्षाकी नींव भी सुदृढ़ कर ली थी। भारतमे अँग्रेजी शिक्षा तीन कूटों--शोषण, शासन और संस्करणपर प्रतिष्ठित थी। वे यहाँ शोषण करनेके लिए आए थे, इसलिये शासनकी बागडोर हाथमे लेना जरूरी हुआ। और उसके लिए शिक्षाके माध्यमसे एक वर्गकी सृष्टि करना भी आवश्यक हुआ, जिससे लोग अपनेको अँग्रेजोंका दूसरा संस्करण समझे। इस प्रकार यहाँ दो शोषक वर्गोंकी सृष्टि हुई, एक जमीदारोंकी और दूसरी अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त नौकरशाहोंकी। एक बात और। उस समय बंगाल, बिहार, उड़ीसा एक प्रान्त था और उसकी राजधानी कलकत्ता थी। अँग्रेजोंने एक 'सूर्यास्त कानून' (Sun-set-Law) बनाया, जिसके अनुसार जो जमींदार सूर्यास्तके पहले बकाया रकम नहीं चुका देता था उसकी जमींदारी उसी दिन नीलाम की जाती थी। इस कानूनके कारण उड़ीसाकी अनेक जमीदारियाँ बंगालियोंके हाथमे चली गई। एक परम्परागत पुराने समाजका लोप हुआ और नये समाजका आविर्भाव। बंगालमें पहले अँग्रेजी शिक्षा फैली और वहीसे अफसरान उडीसा आए। यहाँ की शिक्षाके पतनमें भी उन्हीं लोगोंका मुख्य हाथ था। ठीक उसी समय राजेन्द्रलाल मित्र आदि लोगोंने एक आन्दोलन चलाया कि उड़िया एक स्वतन्त्र भाषा नहीं है। इस प्रकार उड़ीसा प्रदेश, उड़िया भाषा और उड़िया सस्कृतिके ऊपर एक भारी विपत्ति दिखाई दी। सञ्चित विक्षोभों और अवहेलनाओंके प्रतिकारके लिए यहाँ 'उत्कल सम्मिलनी' नामकी एक संस्था १९०३ ई. में स्थापित की गई, जिसके प्रतिष्ठाता मधुसूदन दास थे। इसके अलावा

एक और 'उत्कल साहित्य सम्मिलिनी' प्रतिष्ठत हुई। इसके पहले भी भाषा और साहित्यके उत्थानके लिए कुछ लोग सामने आए, जिनमें मुख्य थे फकीरमोहन सेनापति।

तेजस्वी फकीर मोहन सेनापति (ई.१८४३–१९१८): वे साधक और कुशल शिल्पी थे। उन्होंने चार उपन्यास लिखे 'लछमा छमाण', 'आठगुण्ठ', 'मामु' और 'प्रायश्चित्त'। मराठा शासन कालके पीड़ित उड़ीसाका एक करुण चित्र 'लछमा' मे दिया गया है। परम्परा हीन नये जमीदार वर्गके निर्लज्ज शोषण का जीवन्त चित्र 'छमाण आठगुण्ठ' के जमीदार रामचन्द्र मगराजमें दिया गया है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त निम्न-मध्य वर्गके लोगोंने किस प्रकार देशको तहस-नहस कर दिया था, उसका एक परिप्रेक्षित चित्र 'मामु' और 'प्रायश्चित' में मिलता है। वे कर्मवादी थे। इसलिए सभी कृतियोंमे पुण्यका अभ्युदय और पापका पतन दिखाया है। उन्होंने अनेक गल्प भी लिखे है। 'गल्प शल्प' नामसे उनका दो भागोंमें सग्रह प्रकाशित हुआ है। इनमे वे सस्कारवादी रूपमें प्रकट हुए है और अँग्रेजी शिक्षाके कुफलोकी इनमे कड़ी समालोचना की गई है। किन्तु भाषा उग्र नहीं है। इसके लिए उन्होंने हास्य, व्यग, एव विद्रूपताका सहारा लिया है। किन्तु यह पाठकपर बहुत करुणपूर्ण छाप छोड़ जाता है। हास्य रसमें वे बेजोड़ है। उन्होंने अपना 'आत्मजीवन चरित्र' भी लिखा था, उसमे उन दिनोंके समाजकी अच्छी झाँकी मिलती है। उन्होंने रामायण, महाभारत, खिल हरिवंश, छन्दोग्य उपनिषद आदिका पद्यानुवाद किया था। 'बौद्धावतार', 'उत्कल भ्रमण' आदि काव्य लिखे थे। उनकी अनेक फुटकर कविताओं का संग्रह 'अवसर वासरे' में किया गया है, किन्तु पद्यकी अपेक्षा उनका गद्य अधिक बलिष्ठ है। वे इतने शक्तिशाली और प्रभावशाली थे कि कुछ लोग उन्हीके नामसे आधुनिक युगका नामकरण करते है। वे सब प्रकारसे उड़ीसाकी धरतीकी सन्तान थे। अँग्रेजी शासन और अँग्रेजी भाषाको ग्रहण करते हुए भी जिन्होंने अपनी दृष्टि मिट्टीकी तरफ मोड़ी, उनमे फकीर मोहन, सेनापति थे।

इसी कालमें गगाधर मेहेर, नन्दकिशोर बल, चिन्तामणि महान्ति, लक्ष्मीकान्त महापात्र, गोपालचन्द्र प्रहराज, भिकारीचरण पट्टनायक, गोपीनाथ नन्द आदि और कई प्रसिद्ध कवि और लेखक हुए। उनमेंसे गगाधरकी चर्चा अलग होगी। नन्दकिशोर बल (ई. १८७५–१९२८) पल्ली कवि आख्यासे परिचित है और उनकी कविताका उपजीव्य पल्ली है भी। उन्होंने 'पल्ली चित्र निर्झरणी', जन्मभूमि, 'प्रभासगीत', 'सध्या संगीत' आदि अनेक पल्ली कविताएँ लिखी है। उन्होंने 'शमिष्टा' एक काव्य और 'कनकलता' एक उपन्यास भी लिखे है। उनके कुछ समालोचनात्मक लेख भी हैं। चिन्तामणि महान्ति अनेकानेक काव्यों, उपन्यासों, क्षुद्र गल्पों, गीतों और कविताओंके लेखक है और चार विशाल खण्डोंमे उनका संग्रह प्रकाशित हुआ है। उड़िया जाति तथा भाषाके प्रति स्नेह

इनका मुख्य उपादान है। लक्ष्मीकान्त महापात्र हास्य रसके एक सफल शिल्पी थे। उनकी अनेक व्यंगात्मक लालिकाएँ, हास्य रसात्मक कविताएँ तथा व्यंगपूर्ण नाटक उपलब्ध है। 'कणा मामुं' उनका एक अपूर्ण और अपूर्व उपन्यास है। 'लक्ष्मी चण्डालुणी' उनकी एक नाटिका है। गोपालचन्द्र प्रहराज का व्यंग और विद्रूप अधिक तीव्र होता है। उनकी 'वाई महांति पाण्डि' और 'मुँवस्तानी' में इस प्रकारके कटु व्यंगोंका समावेश है। उन्होंने पहले लोककथाओं और लोकोक्तियोंका संग्रह किया था। उनका भाषा-कोश भारतीय प्रान्तीय भाषाओंमे सबसे विशाल है। भिकारीचरण पट्टनायक प्रथमत: नाटककार है। उनके नाटक हैं—'कटक विजय', 'संसार चित्र', 'सुशीला' आदि। उन्होंने भोर विजय माला, करण साआन्तङ्क ढम भी लिखा था। पीछे उन्होंने कुटीर शिल्पके निवासका प्रारम्भ किया और एक 'कुटीर शिल्प सिरीज' निकाली गोपीनाथ नन्द मुख्यत: प्रबंधकार थे। उन्होंने उड़िया भागवत, दाण्डीय रामायण और सारला महाभारत आदिकी पाण्डित्यपूर्ण आलोचना लिखी। उन्होंने एक प्रकृति अभिधान और उड़िया भाषा तत्व पर उसी नामसे एक विशाल ग्रन्थ लिखा है। इसके अलावा उन्होंने कई संस्कृत नाटकों और काव्योंका अनुवाद भी किया था। प्रबन्धकारके रूपमें राधानाथ रायके पुत्र शशिभूषण राय और विश्वनाथकर भी प्रख्यात है।

इस प्रकार जब उड़िया साहित्यकी उन्नति हो रही थी, तो आधुनिक युगके प्रथम पर्यायके अन्तिम कालमें बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें फिर कुछ परिवर्तन हुआ। राधानाथ, मधुसूदन और फकीरमोहन समकालीन थे। राधानाथने प्रतीच्य सभ्यताका आवाहन किया था और मधुसूदन ने उस धारामे प्राच्य संस्कृतका योग किया था। फकीरमोहनने अँग्रेजी शासनका स्वागत करते हुए अँग्रेजी शिक्षाके कुफलोंकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया था। नन्दकिशोर पल्लीकी ओर लोगोंको ले गए थे। लेकिन वे सब जातीयतावादी कवि थे। इस प्रकार हम देखते है कि धीरे-धीरे देशमें जातीयता जागृत होती गई। १९०३ ई.में उत्कल सम्मिलनीकी प्रतिष्ठा, १९०५ में बंग विच्छेद आन्दोलन और १९१२ में बिहार उड़ीसा प्रदेशके गठन द्वारा. इस जातीय चेतनाका वेग और तीव्र हुआ। उड़ीसामें भी आशा सञ्चारित हुई कि उड़ीसा एक अलग प्रदेश हो सकता है। इस उग्र जातीयता बोधके साथ समाज सुधार और जनताकी सेवा का कार्यक्रम शामिल कर दिया गया। इसी उद्देश्यसे पुरी जिलेके सत्यवादी साक्षी गोपालमें एक जातीय वन विद्यालय स्थापित किया गया, जिसके प्रतिष्ठाता गोपबन्धु दास थे। सत्यवादीके कर्मियोंने नया आदर्श लेकर साहित्य और नए युगकी सृष्टिकी, जिसका नाम सत्यावादी युग पड़ गया। इसमें उड़ीसाका गौरव और जातीयता बोध इतना उग्र था कि उड़ीसाका किसी प्रकारका अपमान वे बर्दाश्त नहीं करते थे। यहाँ तक कि राधानाथने 'नन्दिकेश्वरी पार्वती' आदि काव्योंमें उड़ीसाके इतिहासपर जो आरोप किया था, उसका भी प्रतिवाद किया।

इस जातीय जागरण और सत्यवादी वन विद्यालयके मुख्य थे गोपबन्धु दास और उनके आह्वानसे उद्‌बुद्ध होकर नीलकण्ठदास, गोदावरीश मिश्र, कृपासिन्धु मिश्र, लिंगराज मिश्र, हरिहरदास प्रमुख इसमें शामिल हुए। कृपासिन्धु मिश्रने 'उड़ीसाका इतिहास', 'कोणार्क' और 'वाराबाटी' उड़ीसाके प्राचीन गौरव प्रख्यापक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे। लिंगराज मिश्रने संस्कृत रामायणका अनुवाद किया। नीलकण्ठदासने टेनिसनकी 'प्रिन्सेस' के आधारपर 'प्रणयिनी' और इनोएल आर्डेजके आधारपर 'दास नायक' लिखा था और 'खारवेल' तथा 'कोणार्क' दो काव्य लिखे थे, जिनमें जातीयताका भाव अत्यन्त उग्र है। उन्होंने 'आर्य जीवन' नामक एक प्रबन्ध ग्रन्थ और भगवदगीताकी टीका अत्यन्त पाण्डित्य-पूर्ण मुखबन्धमें लिखी थे। 'संस्कृत ओ संस्कृति' 'ओड़िया साहित्यका क्रम', 'परिणाम' आदि उनकी और अनेक कृतियाँ हैं, जो कुछ परवर्ती कालकी हैं। गोदावरीश मिश्र के दो नाटक है--'पुरुषोत्तम देव' और 'मुकुन्ददेव'। उनकी गाथा कविताओंका संग्रह 'कलिका', 'किसलय', 'आलेखिका' नामसे प्रकाशित हुए है। वे गाथा कवितामें सिद्ध हस्त थे। उनके 'अभागिनी', 'निर्वासिता', 'घटान्तर' आदि कई उपन्यास भी हैं। नेपोलियनकी एक जीवनी भी है। परवर्ती कालकी भी उनकी अनेक कृतियाँ है, जिनमें 'अर्द्ध शताब्दीर ओड़िशारे मो स्थान' उनकी आत्म-जीवनी उल्लेखनीय है।

इसी कालमें महात्मा गाँधीने काँग्रेसका नेतृत्व कर १९२१ ई. में असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। उड़ीसामें क्षेत्र प्रस्तुत था। सत्यवादी वन विद्यालयके कार्यकर्ताओंने मौका पाते ही उसमें सहयोग दिया और उन लोगोंको जेल जाना पड़ा। गोपबन्धु दास जब हजारी बाग जेलमें थे तो 'कारा कबिता', 'बन्दीर आत्मकथा', 'अवकाश चिन्ता', 'मो माहात्म्य', 'नचिकेता', 'धर्मपद', आदिकी रचना की थी। 'धर्म पद' में कोणार्कके शिल्पी शिशु महाराणाके पुत्र धर्मपदका करुण जीवन चित्र दिया गया है।

सन् १९२१ तकके उड़िया साहित्यकी यही संक्षिप्त कहानी है और इसके बाद तो उड़िया साहित्यके इतिहासकी गति ही बदल जाती है।

[**नोट**--सन् १९२० से आज तकका उड़िया साहित्यका संक्षिप्त परिचय कवि-श्री माला--कालिन्दीचरण पाणिग्राही में दिया गया है।]

● ● ●

गंगाधर मेहेर

[कवि-परिचय]

गंगाधर मेहेर

• • •

सम्बलपुर जिलेके बरगढ़ तहसीलके पश्चिममें एक छोटी-सी जमीदारी है बरपाली। वहीं ९ अगस्त, १८६२ श्रावण पूर्णिमाको गंगाधर मेहेरका जन्म हुआ। 'मेहेर' उनकी उपाधि है। जातिसे वे 'भुलिया' थे और भुलिया लोग प्रायः 'मेहेर' कहलाते हैं। वे लोग व्यवसायकी दृष्टिसे तांती या जुलाहे होते हैं। जुलाहेको उड़ियामें 'झुला' या 'झुलिया' (झोलिया) कहा जाता है। कबीरदासजीको उड़िया साहित्यमें 'झोलिया कबीर' कहा गया है। कबीर 'झुलिया' थे और मेहेर 'भुलिया' मालूम पड़ता है कि 'झुलिया' और 'भुलिया' में कोई सम्बन्ध है। भुलिया लोग सम्बलपुर और आस-पासके अञ्चलमें रहते हैं। लेकिन उनकी भाषा उड़िया अथवा सम्बलपुरी बोली भी नहीं है, छत्तीसगढ़ी या लरिया भी नहीं। उन लोगोंकी भाषाका अध्ययन नहीं हुआ है। लेकिन उसका छत्तीसगढ़ी, या लरियाके और उत्तर या पश्चिम की भाषासे सम्बन्ध है। उस जातिकी स्त्रियोंका पहिनावा भी कुछ अलग है। स्वभावसे वे लोग बड़े सरल और धर्मपरायण होते हैं।

गंगाधरके पूर्वज सम्बलपुर शहरके निवासी थे। उनके प्रपितामह केशव मेहेर बरपालीमें थे। उनके पाँच लड़के थे, इसलिए उनका परिवार 'पाँच भाईया' परिवार कहलाता था, और उनका मकान 'गुडि' मन्दिर या भागवत मण्डपके निकट था, इसलिए 'गुड़ितलिआ' भी कहलाता है। 'तल' का अर्थ उड़ियामें 'नीचे' होता है। गड़ि (मन्दिर) या भागवत मण्डप साधारण बैठकखानेके रूपमें व्यवहृत होता है।

जहाँ साधु-संन्यासी लोग आकर आश्रय भी लेते हैं। वहाँ साधारणतया धर्म चर्चाएँ होती हैं। ऐसे ही एक परिवारमें गंगाधर मेहेर का जन्म हुआ था।

गंगाधर मेहेरके पितामह सदाशिव मेहेर सबमें छोटे थे। वस्त्र बुनना उनका मुख्य व्यवसाय था। वैद्यक और ज्योतिष विद्याका भी उन्हें ज्ञान था। सदाशिवके दो पुत्र थे और उनमेंसे जेष्ठ चैतन्य मेहेर गंगाधरके पिता थे। इनकी माताका नाम सेवती था।

गंगाधरकी शिक्षा ग्राम्य पाठशालामें शुरू हुई थी। उनके पिताकी एक 'चाटशाली' पाठशाला थी, जिसमें उड़िया भागवत पाठ एवं कुछ काव्य-ग्रन्थके छन्द पढ़ाए जाते थे। किन्तु गंगाधरके जन्मसे पूर्व ही वह पाठशाला टूट चुकी थी। इसलिए अपने मकानके निकट एक अन्य जातिकी पाठशालामें उन्होंने 'सिद्धिरस्तु' किया। उन दिनों पहले 'सिद्धिरस्तु' या 'सिद्धिररस्तु' लिखाकर 'अ', 'आ' इत्यादि वर्णमाला सिखाई जाती थी। किन्तु वहाँ 'रास पञ्चाध्यायी'के तीन-चार अध्याय हुए ही थे कि वह पाठशाला भी टूट गई। यह देखकर उनके पिता उन्हें 'नाम-रत्नगीता' पढ़ाने लगे। नाम रत्नगीता दीनकृष्णदासके उत्कलीय वैष्णव सम्प्रदायके अनुसार एक तत्वपरक और शिक्षा मूलक ग्रन्थ है। शुरूमें उनके साथ पाड़ेके पाँच-सात लड़के भी पढ़ते थे। कुछ ही समयमें लड़कोंकी संख्या पच्चीस-तीस हो गई। और अब वह उनके पिताकी एक पाठशाला हो गई। वहाँ गंगाधर जगन्नाथदासकी 'भागवत' भक्तचरण दासके 'मथुरा मंगल' आदिके छन्द अच्छी तरहसे गा सकते थे। इस समय तक गंगाधरकी उम्र दस वर्ष की हो गई थी। इसी उम्रमें उनकी शादी भी हो गई। शादीमें कुछ कर्ज भी हो गया। उनके पिता कपड़ा बुननेमें इतना ध्यान न देते थे, इसलिए बिना कुछ दिए उन्हें घरसे अलग कर दिया गया। कुछ दिनों तक उन लोगोंको बहुत कष्टसे गुजर-बसर करना पड़ा। बहुत कहासुनीके बाद उन्हें पैतृक सम्पत्तिमेंसे कुछ हिस्सा मिला, जिससे कष्टका कुछ निवारण हुआ। इन झंझटोंमें पाठशाला टूट गई और पढ़ाईका क्रम बन्द हो गया।

उन दिनों बरपालीमें एक स्कूल था। उसमें उनकी नाम लिखानेकी इच्छा होती थी, किन्तु किसीसे कह नहीं सकते थे। उसका कारण यह था कि उन दिनोंके कानूनके अनुसार यदि कोई लड़का गैरहाजिर रहे, तो उसके पिताको बरगढ़ जाकर कठिन शारीरिक दण्ड भोगना पड़ता था। एक बार बरगढ़के तहसीलदार बरपाली आए थे। पाड़ेके (मुहल्लेके) किसी दुश्मन ने ईर्ष्यावश गंगाधरके पिताका नाम तहसीलदारके पास लिखा दिया। इससे गंगाधरजी प्रसन्न ही हुए, उनके भविष्यका रास्ता कुछ तो खुल ही गया। दूसरे दिन चपरासी उनको बुला ले गया और वे नियमित रूपसे कुछ दिन ब्राञ्च स्कूलमें जाने लगे। सम्बलपुरमें गर्मीमें दोपहरको पुराण-पाठ होता था। उन दिनों बलरामदासके रामायणका पाठ होता था। अतः उसको सुननेकी इच्छासे वे कुछ दिन स्कूलमें अनुपस्थित रहे

किन्तु पिता द्वारा डाँटे जाने पर वे फिरसे जाने लगे। कभी-कभी स्कूलके शिक्षक पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका 'सीता-वनवास' भी पढ़कर सुनाते थे। बालक गंगाधरको यह बड़ा अच्छा लगता था। इस तरह पाँचवी कक्षा तक उनकी शिक्षा गाँवमें हुई। जब परीक्षा देनेके लिए सम्बलपुर जानेका प्रश्न उठा तो उनके पिताने अनुमति नहीं दी। वर्षाके दिन थे। महानदीमें बाढ़ थी जिसे नावसे ही पार करना पड़ता था। इसलिए उनके पिताको उन्हें भेजनेका साहस नहीं हुआ। इस प्रकार परीक्षा देनेसे वञ्चित होकर वे रो पड़े। फिर वे उसी कक्षामें पढ़ने लगे। करीब एक साल बाद शिक्षकने स्वयं ही छठीं कक्षा भी प्रारम्भ कर दी, जिसमें अन्य पाठ्य क्रमके साथ 'रघुवंश' भी पढ़ाया जाता था। किन्तु कुछ ही दिनोंके बाद शिक्षक-के छुट्टीपर चले जानेसे स्कूल पाँचवीं कक्षा तक ही रह गया। छठीं कक्षाके साथ-साथ गंगाधरकी पढ़ाई भी बन्द हो गई।

पढ़ाईके साथ-साथ वे घरपर कपड़ा बुननेके काममें पिताकी मदद भी करते थे। सारे विद्यार्थी जीवनमें कभी उनको एक अच्छा कपड़ा या कुर्ता पहननेको नहीं मिला।

पढ़ाई समाप्त होनेपर दिनभर वे घरमें काम किया करते थे, लेकिन जब कभी थोड़ा बहुत समय मिलता तो उसे वे पढ़नेमें ही लगाते थे। माँगनेपर जो भी अच्छी पुस्तक उन्हें मिल जाती, वे उसका अध्ययन करते थे। कभी-कभी तमस्सुक में कुछ पैसे भी मिल जाते थे, जिसे वे किताबें खरीदनेमें व्यय करते। धीरे-धीरे उन्होंने कपड़ा बुनने का काम अच्छी तरहसे सीख लिया और १६ सालकी अवस्थामें उनका द्विरागमन हो गया। शादीके बाद उनके पिताने धीरे-धीरे परिवार-पोषण का भार भी उनपर छोड़ दिया तथा स्वयं बुनाईसे मुक्त हो साहूकारी और वैद्यकी करने लगे।

इस प्रकार उनका जीवन-क्रम चल रहा था कि बरपाली स्कूलमें एक नए शिक्षक आए जिन्होंने गंगाधरको परीक्षा देनेके लिए प्रेरित किया। इसलिए फिर उन्होंने स्कूलमें अपना नाम लिखवा लिया तथा बीस सालकी उम्रमें सम्बलपुर जाकर इम्तहान दिया। चूँकि उनकी कवि मनोवृत्ति थी, फलतः उन्हें सब विषयोंमें अच्छे अंक मिले पर गणितमें असफल रहे; इसलिए व्हिलेज स्कूल सर्टिफिकेट न मिलकर देशी-पाठशाला पास सर्टिफिकेट ही मिला। इसी सार्टिफिकेटने उनके भावी जीवनेकी गति निर्धारित की तथा इसीके बलपर भविष्यमें उन्हें नौकरी मिली।

गंगाधर अपने माता-पिताकी एक मात्र सन्तान थे, इसलिए वे उनको नौकरीके लिए कहीं अन्यत्र नहीं जाने देना चाहते थे। जब बरपालीके जमींदार नृपराजसिंहको उनकी योग्यताका परिचय मिला तो, उन्होंने वही उन्हें अपनी जमींदारीमें एक अमीन की नौकरी दे दी। उनकी तनख्वाह सात रुपए निर्धारित की गई, जो राजकीय अनुग्रह समझी जाती थी। परन्तु कुछ दिन काम करनेके बाद वह बन्द हो गई। वे कुशल

बुनकर होनेके कारण अपने पेशेसे ही गुजारा करने लगे, लेकिन न्याय पथसे विचलित नहीं हुए। एक बार कनबाड़ नामक एक ग्राममें अनाधिकार प्रभुत्व जमानेके कारण बरपालीके जमीदार और मुखतार के विरुद्ध एक मुकदमा दायर हुआ। मुखतारके लाख कहनेपर भी गंगाधरने साक्षी देनेके लिए साफ इनकार कर दिया। उनकी बात न मानकर मुखतारने साक्षी करवा दी, परन्तु उनकी सचाईकी गवाहीसे सबको जुर्माना हुआ। अपीलमें जमीदारको तो रिहाई मिली, लेकिन बाकी सबका जुर्माना कायम रहा। इसपर जमीदार तो कुछ क्रुद्ध हुए, किन्तु मुखतार बिगड़े नहीं, उनका भाव पूर्ववत् रहा। फिर जमीदारी में बन्दोबस्तका काम शरू हुआ और मुखतारने उनको जमीनका कार्य करनेके लिए बाध्य किया। उनकी सचाई देखकर बन्दोबस्तके बाद जमीदारने उनको माल मुहर्रिरके पदपर नियुक्त किया और धीरे-धीरे खमार, बाजार आदि अनेक हिसाबोंका कार्य भार उन्हें सौंपा। उनकी तनख्वाह ७ से ८), ८ से १०) एवं १० से १५) तक क्रमशः बढ़ी। सन् १८९९ में बरपाली के जुडीसियल मुहर्रिरकी मृत्यु हो गई। जमीदारने गंगाधरजीके नामकी सिफारिश कर उस जगह उन्हें नियुक्त करवा दिया। क्रमशः २०) से लेकर ३५) तक वेतन वृद्धि हुई। इस नौकरीमे बरपालीमे करीब तीन साल रहे, फिर तबादला होनेपर उन्हें सम्बलपुर, बिजेपुर और पद्मपुर भी जाना पड़ा। सन् १९१७ में पेन्शन लेकर कुछ दिन पद्मपुरमें ही रहे। पद्मपुर(बुढ़ा संबर)के जमीदारने अपनी राजधानीके नजदीक तेडापदर नामक एक गाँव उन्हें जागीरके रूपमें दिया था और उनकी स्मृति-रक्षाके लिए एक नव स्थापित गाँवका नाम 'कविवरपुर' रखा था। गंगाधरजी पद्मपुरमें रहते समय, जमीदारी अदालतमे ऑडिटरका काम भी करते थे। किन्तु वहाँ रहना उनके मनको न भाता था, वे अपनी जन्म-भूमि बरपाली लौट आना चाहते थे। बरपालीके परवर्ती जमीदारके अनुरोधसे वे बरपाली लौट आए और वहीं माल-मुहर्रिर नियुक्त हो गए। लेकिन अन्याय, अत्याचार और दुराचारसे कुछ क्षुब्ध होकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी। वे विद्रोही हो उठे। आत्म-मर्यादा उनकी दृष्टिमे बहुत बड़ी चीज थी। उन दिनोके बामण्डाके साहित्य रसिक, गुणग्राही राजा सच्चिदानन्द त्रिभुवन देवने प्रचुर धन और भूमि देनेका आश्वासन देकर उन्हें बामण्डामें रहनेके लिए निमन्त्रित किया। किन्तु उन्होने अस्वीकार कर दिया। अब वे राजसेवाके अभिलाषी नहीं रह गए थे। भला अँग्रेजोंसे बड़ा राजा कौन था? जब उस राजाकी सेवामें वैराग्य पैदा हो रहा था, तब दूसरे राजा की सेवा के लिए इच्छा क्यों करते? इन दिनों उनका मन बहुत अशान्त था। आदर्शवादी तो वे थे ही। अपनी 'भुलिया' जाति की कुछ बुरी प्रथाओंको दूर करनेके लिए उन्होंने एक महासभाका संगठन किया और उसमें सुधारके कई प्रस्ताव पास कराए।

गंगाधरजीको प्रथम पत्नीसे दो लड़के और लड़कियाँ हुई। बड़े लड़केकी अल्पायुमें ही मृत्यु हो गई। फिर सन् १९१७ में पत्नी भी उन्हें छोड़कर चल बसी।

करीब एक साल बाद उनका दूसरा विवाह हुआ। वे अपने दूसरे लड़के भगवान मेहेरके लिए विशेष चिन्तित रहते थे, क्योंकि वे उसे न तो उच्च शिक्षा ही दे सके और न कोई जीवन-निर्वाह की व्यवस्था ही कर सके थे। वे उसे बहुत प्यार करते थे और हमेशा अपने पास ही रखते थे। आजकल उनके एक पौत्र श्री विनोदचन्द्र मेहेर, बी. ए. इधर किसी अच्छी नौकरीपर है।

गंगाधरजीका जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था। बचपनमें ही उनकी पढ़ाई शुरू हुई थी रासपञ्चाध्यायी, भागवत, तथा नारमल गीतासे। रास-पञ्चाध्यायी, भागवतका ही एक अंश है, जिसमें गोपियोंकी भक्तिका एक श्रेष्ठ निदर्शन है। 'नारमल गीता' दीनकृष्णदासकी लिखी हुई है और उसमें श्रीकृष्णकी बाल-लीला, योगतत्व और कुछ उपदेशात्मक कथाएँ वर्णित है। उनकी शिक्षामें प्राचीनता और नवीनताका सम्मिश्रण था। उनकी शिक्षाका प्रारम्भ प्राचीन पद्धतिकी पाठशालामें हुआ, तदनन्तर वे भर्ती हुए आधुनिक पद्धतिके स्कूलमें। सन् १८८२ में स्कूल छोड़नेके बाद प्राचीन रीति काव्य 'लावण्यवती', 'सुभद्रा परिणय', 'रसिकहारावली', 'वैदेहीश विलास', 'रस कल्लोल' ने गंगाधरके बालकवि हृदयको अत्यन्त आलोड़ित किया। उनके कवि-जीवनमें इस शिक्षाका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार वे नूतन युगके राधानाथके ऐतिहासिक कालमें बीते हुए सन्धिकालके कवि भी कहे जा सकते है। उन्होंने एक पग आधुनिक युगमे रखा, लेकिन प्राचीन युगसे पूर्णतयः विलग न हुए। उनकी प्राथमिक कविताओंमे रीतिकालकी छाप स्पष्ट है, जिसका होना स्वाभाविक भी है। उनकी शिक्षाके अनुसार उनके सामने दीनकृष्ण, उपेन्द्र भञ्ज आदर्श थे। उनकी रीतिका अनुकरण कर उन्होंने 'रस रत्नाकर' लिखा। यह काव्य 'उषा' अनिरुद्ध-परक है। किन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि रीतिकाव्यके अनुसरणपर लिखित होने पर भी 'रस रत्नाकर' की भाषामें क्लिष्टता नहीं है, भाषा सरल और मधुर है। जैसे :—

रघुनाथ इन्दीवर नेत्र मनोहर।
रसा सूता हृद जीवन्जीव-सुधाकर॥
रतिपति जित छवि श्यामण सुन्दर।
रमणीय दिशे बेनि भुजे चाप शर॥
रक्षकुल संहारणे तब अवतार।
रखिल विभीषणकु करि लंकेश्वर॥
रज लभि जहुँ ऋषि रमणी निस्तार।

इस कविताको ह्रस्व-दीर्घ नियमसे पढ़ना चाहिए। कविने इसको प्रकाशित कर एक प्रति राधानाथ रायके पास भेजी। वे इसे पढ़कर बहुत खुश हुए और उनकी प्रतिभा देखकर उन्हें बहुत प्रोत्साहन दिया।

अब कवि गंगाधर द्वारा राधानाथ राय द्वारा प्रदर्शित मार्गमें चलने लगे। उन्होंने रीतिमार्ग और संस्कृत छन्दोंको छोड़कर सरल उड़िया छन्द अपनाए। उन्होंने शार्दूल विक्रीडितको बंगला श्री में बदल दिया और छोटी-सी अवतरणिका जोड़कर फिरसे 'अहल्यास्तव' लिखा। यह और भी हृदयग्राही हुआ। अतः यह प्रगट है कि गंगाधरने भाषाकी शैली बदल दी, उसे और अधिक सरल बना दिया, तथा उसमे नूतन भावोंका समावेश किया। उनपर राधानाथ रायके काव्योंका काफी प्रभाव पड़ा। उनका प्रथम काव्य है 'इन्दुमती'। इन्दुमती पर राधानाथकी 'उषा' की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। 'उषा' में जयन्तके उषाके साथ कठोर दौड़की परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद विवाह-वेदीमें पाणिग्रहण होते ही दोनोंकी मृत्यु होती है। सम्भोग शृगारमें करुण और विप्रलम्भ आता है। लेकिन उषा और जयन्तकी दौड़ भारतीय रुचिके विरुद्ध है, यह 'Atlantas race' पर आधारित है। गंगाधरको इसकी रस योजना तो अच्छी लगी, लेकिन कथावस्तु शायद नही जँची। इसलिए शिल्पी गंगाधरने इन्दुमतीकी कथा चुनी। यह कथावस्तु कालिदासके 'रघुवंश' से ली गई है; परन्तु यह अनुवाद नहीं है। कवि 'अहल्यास्तव' में कहते हैं :—

सशरीर प्राण ये, करे प्रदान
ताकु वन्दिबार भाषा,
निजे वीणापाणि, न थिवे त जाणि,
तहिँ काहिँ मोर आशा ?
तथापि न कहि, हुए नाहिँ रहि
याहाकु या विशे भल,
सेहिपरि दुइ, चारि कथा कहि
कृतार्थ हेलि केवल

[जिस सर्व शक्तिमानने सशरीर प्राणोंको प्रदान किया है, उसकी वन्दना किस भाषामें की जाए ! यह शायद सरस्वती भी न जानती होंगी—वहाँ मेरी क्या गणना ? फिर भी इस दिशामें अपनी-अपनी रुचिके अनुरूप कहे बिना रहा भी तो नहीं जाता ! इसलिए मैं दो-चार बातें कहकर कृतार्थ ही हुआ हूँ।]

'इन्दुमती' काव्य शुरू होता है विदर्भ नगरके संक्षिप्त वर्णनसे। स्वयम्वरमें अजका प्रवेश, इन्दुमतीका प्रवेश, राजाओंकी अवस्था प्रभृतिका वर्णन अपने ढंगसे किया गया है।

गंगाधरने राजाओंकी शृंगार-चेष्टाओंका विशद वर्णन छोड़ दिया है और परित्यक्त राजाओंकी अवस्थाका वर्णन करते हुए कई नई उपमाओंका संयोजन किया

है। उनकी उपमाओंमें कुछ पारम्परिक हैं और कुछ उनकी अपनी हैं। उन्होंने अपने परिवेशसे कुछ उपमाएँ आहरण कर उनका प्रयोग किया है।

इन्दुमती पढ़कर श्री राघानाथ रायने उनकी खूब प्रशंसा की। जिससे उनको बहुत प्रोत्साहन मिला। इसके बाद उन्होंने 'उत्कल लक्ष्मी' प्रारम्भ किया। 'उत्कल लक्ष्मी' में भी राधानाथीय विचार धारा प्रतिपादित है। राधानाथके द्वारा अपनी प्रशंसाके प्रति प्रशंसा है।

राधानाथ रायके काव्योंमें पुरी (केदार गौरी), चन्द्रभागा, कटक (नन्दि-केश्वरी) बालेश्वर (उषा), और आसपासके कुछ 'गड़जातों'को स्थान दिया गया है। गंगाधरने पश्चिमी अञ्चलके सम्बलपुर,बालांगीर,बामम्डा आदिको भी स्थान दिया है। इस काव्यके प्रथम अंशमे उत्कलका गौरव गान किया गया है। उसके बाद चन्द्र और रोहिणी उत्कलके मयूर भञ्जमें रामचन्द्र भञ्ज और 'प्रभा' ('उत्कल प्रभा', मयूर भञ्जसे प्रकाशित एक मासिक पत्रिका)के रूपमें पैदा होते है। उसके पहले वृहस्पति सुढ़ल देवके रूपमें और शुक्र राधानाथके रूपमें पैदा हुए। भक्तके मन्त्रसे निर्जीव प्राणी भी सजीव हो उठते है। ये सब उत्कल लक्ष्मीकी पूजा करते है और पूजाके लिए आते है। वे कहते है:--

बहु रथ थिला, यिहिबाकु सबु
हेउथिलि तरवर,
रुद्ध करि देला, नयन युगल
आनन्द लोतक झर,
से झरे प्लावित, हेला वक्षस्थल
प्राण हेला पुलकित
मने हेला तहिँ, नखु नाक याए
होइब अछि निमज्जित।

पहले 'उत्कळ लक्ष्मी' अधूरी छपी थी, बादमें इसे सम्पूर्ण प्रकाशित किया गया जो आजकल उपलब्ध है। इसकी भाषामें सरलता एवं माधुर्य है तथा कल्पना भाव चातुर्य युक्त है।

इससे अधिक उत्साहित होकर आगे उन्होंने कीचक बध'नामक काव्य लिखा।

इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है। 'इन्दुमती' के समान इसमे भी पुरातन को नूतन रूप दिया गया है। और इसके नायक-नायिकाएँ और अन्य पात्र सम्पूर्ण भारतीय हैं। 'कीचक बध' की रचनाके समय गंगाधरजी बिजेपुरमें थे। वहाँके जमीदार संकर्षण गढ़तिया धर्मप्राण, सरल और आश्रितवत्सल थे। किन्तु उनके भाई अनिरुद्ध गढ़तिया दुराचारी और लम्पट थे। ऐसी परिस्थितियोंसे क्षुब्ध होकर

उन्होंने 'कीचक वध' की रचना की। इसमें पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का द्वन्द्व है तथा अन्तमें धर्मकी अधर्मपर और पुण्यकी पापपर विजय दिखाई गई है।

इस ग्रन्थमें शृंगार, रौद्र, वीर, भयानक, हास्य आदि रसोंका समावेश किया गया है। इसमें वसन्त वर्णन, संध्याका वर्णन तथा सुन्दरियोंका यात्रा वर्णन आदि अत्यन्त मनोरम हुआ है। सन् १९०३ ई. में 'कीचक बध' की रचना की गई थी। इसके बाद बहुत दिनों तक वे चुप्पी लगा गए। 'कीचक बध' के मुखबन्धमें राधानाथ लिखते हैं :—"गंगाधरका दुर्भाग्य कि वे उड़ीसामें पैदा हुए हैं। अनन्त सौन्दर्यो-वासिनी प्रकृति देवी और प्रकृति देवीका यह पुरोहित जो बाल्यकालमें व्यास और वाल्मीकिका चिर सहचर था। उदरपूर्तिकी जटिल समस्याका समाधान उनके जीवनका प्रधान व्यवसाय बन गया था।" इससे मालूम होता है कि दारिद्रय उनकी प्रतिभा विकासकी एक प्रधान रुकावट थी। सन् १९०८ ई. में राधानाथकी मृत्यु हुई। तब तक उन्होंने कुछ नहीं लिखा था। ई. सन् १९०९ की राधानाथकी श्राद्ध-सभामें श्री ब्रजमोहन पण्डा उपस्थित थे और वे उस परिवेशसे अभिभूत हो गए। उन्होंने गंगाधरके पास चिट्ठी लिखनेका निश्चय किया और उनके साथ सम्पर्क स्थापित किया। यह गंगाधरके कवि जीवनमें एक महत्वपूर्ण घटना है। दारिद्रय ज्वाला, पारिवारिक अशान्ति और पृष्ठपोषकताके एकान्त अभावसे दग्ध और नीरव गंगाधरको उन्होंने मुखर किया। उनकी निश्चल लेखनी चञ्चल हुई, उनकी समस्त कृतियोंके प्रकाशनका भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। इसका फल हुआ 'अयोध्या दृश्य'।

'अयोध्या दृश्य' में तीन सर्ग या दृश्य हैं :—

(१) रामचन्द्रका अभिषेक-प्रस्ताव और वनवास।

(२) पुत्र विरहमें कौशल्याकी अवस्था और

(३) वनवाससे प्रत्यावर्त्तनके साथ भरत मिलन और राज्याभिषेक।

इसके सब दृश्य करुण रसपूर्ण है। द्वितीय दृश्यमें पुत्र-विरहित मातृ-हृदयका एक अच्छा वात्सल्य रसपूर्ण चित्र दिया गया है।

इसमें गंगाधरके अपने हृदयके भाव मुखरित हुए है। दारिद्रयके कारण उन्हें दैहिक सुख नहीं मिला और साहित्य-सेवाके अभावसे वे मानसिक सुख भी नहीं प्राप्त कर सके। ऐसी परिस्थितिसे वे ऊब गए। वे साहित्य-सेवा छोड़ देना चाहते थे, किन्तु ब्रजमोहन पण्डाके आग्रहके कारण छोड़ नहीं सके। इसलिए 'अयोध्या दृश्य'के बाद 'पद्मिनी' काव्यमें हाथ लगाया। 'पत्रावली' से मालूम होता है कि ब्रजमोहन पण्डा ने उनके पास राजस्थानका इतिहास भेजा था।

इस बार पुराण या संस्कृति-साहित्य छोड़कर इतिहासके कथावस्तुकी ओर उनकी दृष्टि गई, किन्तु सत्य कहा जाए तो 'कीचक- बध' और 'पद्मिनी' काव्यमें शिल्पगत अन्तर अधिक नहीं है; यद्यपि कलागत अन्तर काफी है! निश्चय ही

'कीचक बध' प्रतिभाकी विकसित अवस्था की देन है और 'पद्मिनी' निष्क्रिय-निःस्पन्द अवस्था की।

पद्मिनी काव्यमें दैन्य, अभिमान और विवशताकी ओर कुछ संकेत है!

'कीचक-बध' का कीचक यहाँ अलाउद्दीन है, द्रौपदी है पद्मिनी और चपला है लीला। इसमे भी धर्म और अधर्मका द्वन्द्व है, लीलाकी अनेकों चेष्टाओं पर भी पवित्रता और धर्मपरायणा पद्मिनी अपने धर्मपर स्थिर रहती है। काव्य अपूर्ण है, किन्तु परिणति स्पष्ट है।

अलाउद्दीनके बारेमें लेखनी और मनकी उक्ति स्पष्ट प्रयुक्त हुई है। उनके परवर्ती काव्योंमे इस शैलीका और अधिक विकास हुआ है। गंगाधरके राजद्रोही मनने एक अच्छा चित्र उपस्थित किया है। हम देखते है कि उनकी प्रतिभा धीरे-धीरे उद्भासित हो रही थी। वे कहते है—"भलेकर पाइछि के प्रतिभा शक्ति अन्यता न पारे नेइ बलइले मति।" इसलिए 'पद्मिनी'की सृष्टिमें उनका मन नहीं भरा और उन्होंने उसे अधूरा छोड़ दिया। उन्होंने और बड़ी सृष्टिकी कल्पना की, और उनकी दृष्टि कालिदासकी ओर गई। कालिदासकी श्रेष्ठ कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है, उन्होंने उसे हाथमें लिया। एक प्रतिभाशाली व्यक्ति ही कालिदासकी कीर्ति पर हाथ रखनेका साहस कर सकता है। यह सिर्फ अनुवाद नहीं है।

कालिदासके सम्पूर्ण काव्य-सौन्दर्यका समावेश इसमें नहीं किया गया है। उन्होंने और भी कहा है कि नाटक में नायक-नायिकाओंके हृदयकी प्रशस्त चिन्ताएँ विस्तृत रूपसे चित्रित नहीं हो पातीं, उसीको दृष्टिमें रखकर उसके उड़िया काव्य रूपमें लेखककी स्वतन्त्रता प्रयुक्त हुई है, अर्थात् कविके मतसे नाटकके कारण कालिदास जिन विभागोंका विस्तृत विकास नहीं कर पाये, उन्होंने काव्य होनेके कारण उसका बृहद् विस्तार किया है। वह क्या है? वह है 'प्रणय'। गंगाधरने अपने काव्यका नाम रखा है, 'प्रणय वल्लरी' और सर्गोंका नाम रखा है—'प्रणय-अंकुर,' 'प्रणय पल्लव', 'प्रणय प्रसून', 'प्रणय सौरभ', 'पुष्पे कीट', 'प्रणय फळे', 'प्रणय छाया'। शकुन्तला नाटकके अन्य अंशोंकी अपेक्षा प्रणयका अधिक विस्तार किया गया है। इसमें कवि मध्य युगीन परम्पराके अनुयायी हो गए है। मन विवेक की उक्ति-प्रयुक्ति भी है। शब्द श्लेषका भी प्रयोग किया गया है, किन्तु इन सबमें वे अत्यन्त संयत हैं।

द्वितीय सर्गमें नवीन प्रणयांकुर राजाके मन और विवेकका द्वन्द्व और शकुन्तलाकी मानसिक अवस्थाका विश्लेषण किया गया है, जो तृतीय सर्गके 'प्रणय परिवेश' की सृष्टि करनेमें सहायक होता है। इसमें राजा, शकुन्तला और सखियोंका मिलन, आलाप, छलोक्ति आदि अत्यन्त हृदयग्राही हुए हैं।

शिल्पी गंगाधर अपने कौशल से उड़ीसाको भी इसमें ले आए है। दुष्यन्त राक्षसोंका आक्रमण दूर करनेके लिए स्वर्गमें गए थे। इस आक्रमणका कारण था कि देव-कन्याओंने राक्षस कन्याका अपमान किया था। एक दिन जगन्नाथपुरीके समुद्र-तट पर नीलाचलके नीचे शान्ति, श्रद्धा, दया, क्षमा, भक्ति आदि देवकन्याएँ घूमती थीं। राक्षसराज कन्या-हिंसा वहाँ आई और उनमें झगड़ा हुआ। यह भी एक सुन्दर चित्र है।

दुष्यन्त और शकुन्तलाका पुनर्मिलनका दृश्य भी बड़ा चमत्कारी और नाटकीय हुआ है। इसमें प्रकृति-वर्णन भी अपने ढंगका है।

'प्रणय बल्लरी' में प्रणय या सम्भोग शृंगारका चित्र दिया गया है। उसके बाद कवि की दृष्टि गई विप्रलम्भ शृंगार या करुण रसकी ओर। 'उत्तररामचरित' में भवभूतिने कहा है :—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्,
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान ।

इस रसके प्रकृष्टतम आलम्बन है विसर्जनके बाद राम और सीता। इसलिए कविका ध्यान उनकी ओर गया और 'तपस्विनी' की रचना की। 'तपस्विनी' सीता ही है। ऐसा लगता है कि इस नामकरणमें उनपर कालिदासका प्रभाव पड़ा था। कालिदासने कहा है:—

नृपस्य वर्णाश्रम पालनम् यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासितात्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥

नरपतिका वर्णाश्रम धर्म पालन ही मनु प्रणीत धर्म है। इसलिए निर्वासित होनेपर मुझे अन्य तपस्वियोंको समान देखना चाहिए। किन्तु कालिदासकी अपेक्षा 'तपस्विनी' में भवभूतिका अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। भवभूति सीताके सम्बन्धमें कहते है:—

परिपाण्डु दुर्बल कपोल सुन्दरम्
दधती बिलोल कवरीक माननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।

पाण्डुर और दुर्बल कपोलसे सुन्दर आननपर विलोल कबरी पड़ी थी। इस रूपमें जानकी करुण रसकी मूर्ति वा शरीरणी-विरह व्यथा-सी वनमें आती है। 'तपस्विनी' काव्य यहींसे शुरू होता है। लक्ष्मण कृत्त सीताका विसर्जन, सम्वाद आदि पूर्व अंश छोड़ दिया गया है। केवल जानकी ही नहीं, रामका भी करुण रस कूट परकके समान गाम्भीर्यके कारण अप्रकटित है और घनीभूत व्यथा अन्तर्गूढ़ है। दोनोंके इस करुण रसका रूप देना कवि का उद्देश्य है। यह करुण रस और सघन होता गया है। राम और सीता दोनोंके मानसिक द्वन्द्व प्रदर्शनके द्वारा पति और राजा रामके मानमें यथार्थ और आदर्शके संघर्षमें आदर्शकी विजय हुई है। वे कहते हैं:—

प्रकृतिर शान्ति-यज्ञरे नृपति,
सुखरि स्वभावे बलि।
दृढ़ धर्मदामे, बद्ध निज कामे,
पादेन पारइ चलि।

[प्रजाके शान्ति यज्ञमें स्वभावतः राजाको सुखकी बलि देनी पड़ती है। दृढ़ धर्म रज्जुसे बद्ध राजा अपने कर्तव्य कर्मसे एक कदम भी नहीं चल सकता।]

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सीताके प्रति रामका प्रेम घट गया। 'अन्तर्गूढ़ धन व्यथ' राम कहते है :—

नाहिं सिना धरे, हृद-प्रेम सरे,
मो प्रिया कमल कलि।
पड़िअछि फुटि, मकरन्द लुटि,
करुअछि मन अलि।
नयन-युगल, कांहिकि बिकल,
होइ छाड़ु अछ जल।
सुखि गले सर, कमलिनी मोर,
होइ इव टल टल।
वक्ष तु पथर, बंध होई कर,
रुद्ध नेत्र जल जाली।
नासिका पवन, न बहिबु धन,
कंपिब प्राण सखालि।

[राम रो भी नहीं पाते। रोनेसे नयन मार्गसे जल निष्कासित हो जाएगा, सरोवर सूख जाएगा और कमलिनी सीता सूख जाएगी। राम हृदयको पत्थर कर नेत्रजल नालीको रोकते है। और जोरसे निस्वास भी नहीं लेते, ताकि कमलिनी सीता कम्पित न हो जाए।]

रामचन्द्रके इस प्रेम को सीता जानती थीं, इसलिए कालिदासने जो कहा है :—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा बह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम।
मां लोकवाद श्रवणादहासीः; श्रुतस्य कि तत्सदृशं कुलस्य ॥

यह कवि गंगाधरकी कल्पनाके बाहर है। गंगाधरकी सीता रामको 'वांच्य' नहीं कह सकती। इसलिए 'तपस्विनी' की भूमिकामें गंगाधर कहते है—उन्होंने (सीताके) निर्वासनको अपना भाग्य-दोष कहकर किस प्रकार पति-भक्ति की दृढ़ता और उच्चताका परिचय दिया है— वनवासको पति-हित-साधिनी-

तपस्यामें परिणित कर तपस्विनीके रूपमें किस प्रकार दिन व्यतीत किए, उसे प्रकट करना ही इस पुस्तक का प्रधान उद्देश्य है।

प्रणयिनी सीता और पत्नी सीताके मनमें द्वन्द है, पत्नीत्व आदर्श की विजय हुई है। प्रणयिनी सीता निर्वासिता होनेपर शरीर त्यागना चाहती है, परन्तु पत्नी सीताके ऊपर रघुकुल की वंश-रक्षा का भार है, इसीलिए वे उससे विरत होती है। यहाँ प्रणयिनी सीता के अतीत जीवनका एक विशद चित्र खींचा गया है, जिससे करुण रस और भी मूर्तिमन्त हो उठा है। किन्तु वे कभी रामचन्द्रको कोसती नहीं। निर्वासनका कारण वे अपने भाग्य या अपने कर्म को ही समझती हैं।

प्रकृति-प्रेमी कवि गंगाधरने तमसा, महानदी, गोदावरी आदि नदियों, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं, तथा उषा, सन्ध्या आदि कालों और अनुकम्पा आदि भावों को भी सजीव मूर्तिमान् और मनुष्योंके सुख-दुखका साथी समझा है। प्रकृति-चित्रणमें वे अत्यन्त निपुण है।

'तपस्विनी' काव्यमें ग्यारह सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग अपनेमें पूर्ण है। प्रत्येक सर्ग एक-एक खण्डकाव्य कहा जा सकता है। इसमें खण्ड सौन्दर्य होते हुए भी अखण्ड सौन्दर्य है, यह खण्ड काव्यात्मक अखण्ड काव्य है।

इन काव्योंके अलावा गंगाधरने अनेक फुटकल कविताएँ भी लिखी है। इनमें उनके जीवन दर्शन, भक्तिवाद, ईश्वर-प्रेम, देश-प्रेम, जातिप्रेम आदिकी स्पष्ट सूचना मिलती है। इन कविताओंका संग्रह 'कबिता कल्लोल' 'अर्घ्यथाली', 'कबिता माला', 'कृषक संगीत' आदिमें किया गया है, कुछ इनमें शामिल नही है।

'कबिता कल्लोल' के 'वेदव्यास' में देश-प्रेम प्रधान भाव है। सुन्दरगढ़ जिलेके शंख-कोइली नदियोंके संगम-स्थलपर वेदव्यासका गर्भाधान हुआ था, ऐसा विश्वास है। इसलिए उस जगहका नाम 'वेदव्यास' है और वहाँ एक मेला लगता है। इसकी चन्द्र-रजनी कख कख गघ गघ ङ ङ क्रममें लिखित दशपदीय सॉनेटोंमें लिखी गई है।

इनकी 'सोमनाथ विजय' भी इसी प्रकारके सॉनेटोंमें लिखी गई है। इनके अतिरिक्त 'वसन्त वासर' और 'वर्षा चित्र' समाविष्ट है। उनके कुछ चतुर्दशपदी सॉनेट क ख क ख, ग घ, ग घ, ङ च, ङ च, छ छ, नियममें लिखी गई है।

'अर्घ्य थाली' में उनके जीवन-दर्शन और ईश्वर-प्रेमकी अच्छी झाँकी मिलती है। उसकी प्रथम कविता है 'भक्ति'।

गंगाधरके बाल्य जीवनमें जो भक्ति रूपी बीजारोपण हुआ था, इसमें उसका सम्पूर्ण विकास हुआ है। 'अमृतमय', 'मधुमय' में इसी प्रकार का भाव है। जीवन जिस प्रकार अमृतमय है, उसी प्रकार मधुमय भी। 'मधुमय' में वे कहते हैं:—

बिश्व देख मधुरमय रे जीवन,
बिश्व देख मधुमय

मधुर झरण करिव हरण
तो पाप मरण भयरे जीवन ।
जननीय स्नेह जायार प्रणय,
बुध बन्धु सदा लाभ ।
जनक आदर एक एक झर,
तीड़ देनु छन्ति तापरे जीवन ।

[विश्व मधुमय है । मधुका झरना पाप-मरणका भय दूर करता है । जननीका स्नेह, जायाका प्रणय, बुध जन और बन्धु जनोंका सदा लाभ, पिताका आदर, प्रत्येक एक-एक झरने हैं और वे ताप दूर कर देते हैं ।]

इसमें 'मधु वाता वै ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः का' मधु उदात्त स्वर है, 'का ते कान्ता, कस्ते पुत्रः' का नहीं। उनका देश-प्रेम भी आदर्श कोटिका है, वे 'उत्कळ भारती' में कहते है :—

नख बढ़िथिले कर करतन,
रञ्जिदिअ तहिं अलता रंग ।
नाक बढ़िथिले ताकले छेदन,
हेब नहिं कि मो सौष्ठव भंग ।

[नाखून बढ़ गया है, तो उसे काटकर अलतासे रंग देना चाहिए । नाक बढ़ गई है, तो उसे काट देनेसे क्या मेरा सौष्ठव भंग नहीं होगा ?]

आज भी यह बात सच्ची है। आज भावगत ऐक्यका धूंआ उठा है। किन्तु उन्होंने 'मातृभूमि' कविता मे कहा है कि बालक अपने घरसे दूसरोंके घर, घरसे पाड़ा, पाड़ेसे ग्राम और ग्रामसे ग्रामान्तर जाता है—इस प्रकार उसका बोध बढ़ता ही जाता है :—

एहिरूपे ग्रामकथा राज्यकथा
देशकथा विश्वकथा
मानव जीवने प्रतीत हेबार
दर्शित हुए सर्वथा ।
मातृ-भूमि मातृ-भाषा रे ममता
या हृदे जनीम नाहिं,
ताकु येवे ज्ञानि गणरे गणिवा
अज्ञान रहिबे काहिं ।

ग्रामसे राज्य, राज्यसे देश, देशसे विश्व-बोध, मानव जीवनमें उत्पन्न होता है। मातृभूमि और मातृभाषाके प्रति जिसमें ममता पैदा नहीं हुई है, उसे यदि ज्ञानियोंमें गिना जाए तो अज्ञानी कहाँ रहेंगे ? उनका देश-प्रेम इस प्रकार का था।

सामाजिक अत्याचारोंको देखकर भी उनका हृदय रो उठता था। ब्रिटिश शासन कालमे शासकोंको धर्मावतार कहा जाता था। उनको लक्ष्य कर वे कहते है :—

मन यार व्यस्त सदा पर स्वहरणे,
धन यार विदलित गणिका चरणे।
जीवन या लक्ष-लक्ष लोकङ्कर भार,
ताकु मध्य बोलि थान्ति धर्म अवतार।

इन पंक्तियोंमे शासकोंका जो चित्र दिया गया है, वह आज भी सत्य है। इसी सुरमें उन्होंने 'भारती भाबना' गाई है। इसमें गोपेन्द्रकी स्तुति है, किन्तु श्लिष्ट अर्थमें पराधीन भारतकी अँग्रेजोके प्रति उक्ति है।

वे संस्कारक मनोवृत्तिके थे तथा पञ्चायत शासनके पक्षपाती। इसी मनोवृत्तिको लेकर उन्होंने 'कृषक संगीत' लिखा था। इसकी कल्पना एक अभूतपूर्व कल्पना है। 'वर्जिल की जॉजिकस' कवितामे इस प्रकारकी कल्पना पाई जाती है। 'कृषक संगीतमें 'अन्न' की महिमा 'कृषिका गौरव' 'कृषककी आत्मकथा' 'भूमि विभाग' और विभिन्न शस्योंकी कृषि वर्णित है। इसमें प्रयुक्त छन्द सम्बलपुर अञ्चलमें प्रचलित 'हलिया गीत' या 'किसान गीत' से लिया गया है। इसमें संस्कारी भावना और विश्व कल्याण भावनाके साथ-साथ कवित्व भी है। अन्न की महिमाका बखान करते हुए वे कहते हैं :—

अन्न पाई सलिले लीला करे हंस,
वृक्ष भाषे कोकिल अन्न करि ध्वंस।
अन्न पाई खेतरे खेलइ खञ्जन,
यहि देख आनन्द आमोद तहिं रे
अछि अन्न हे!!

'कृषिका गौरव' में सभ्यताके विकासमें कृषि की देन का सक्षिप्त विवरण दिया गया है और कहा गया है:—

कृषि तो वेदरे कृषि तो पुराण।
कृषि बिना रहि न पारइ पराण।
कृषि घेनि नृपति कृषि घेनि सम्य
कृषि बले आयु श्री सम्पद सकल
हुए लभ्य हे!!

'कृषक की आत्मकथा' में एक आदर्श कृषक का जीवन दिया गया है। कृषक कहता है:—

काम मोर खेतरे खेतरे विश्राम,
विश्रामिले एकान्ते गाये हरिनाम।
गान मोर उठिले खेत पक्षी माने
निखरे निश्चले मो गान सुनन्ते
एक ध्यान हे!!"
मोहो गान थामिले उठे ताङ गान,
मधुभरी उठान्ति ए याहार तान,
डाले डाले बिहारि खेलि बुलि मोदे,
ईश्वरङ्क बिचित्र महिमा स्मरान्ति,
मोर हृदय रे!!

इस प्रकार गंगाधर अपनी कविताओंकी अमूल्य थाती सौंपकर सन् १९३४ मे चैत्र अमावस्याके दिन परलोक सिधारे। वे पूर्णिमाके दिन इस लोकमे आए थे और अमावस्याके दिन यहाँसे सदाके लिए चले गए।

● ● ●

गंगाधर मेहेर

[काव्य-सञ्चय]

१. आश्रमे प्रभात

' चतुर्थ सर्ग

मंगळे अइला उषा बिकच-राजिबदृशा
जानकी-दर्शन-तृषा-हृदये बहि,
करपल्लबे नीहार मुक्ता धरि उपहार
सतींक बास-बाहार-प्रांगणे रहि,
कळकण्ठ-कण्ठे कहिला,
"दरशन दिअ सती, राति पाहिला।" ।।१।।

अरुण कषाय बास, कुसुम कान्ति बिकाश,
प्रशान्त रूप, बिश्वास दिअन्ति मने,
केउँ योगेश्वरी आसि मधुर भाषे आश्वासि
डाकुछन्ति दुःखराशि-उपशमने,
देबा पाइं नब जीवन
स्वर्गु कि ओल्हाइछन्ति मर्त्यभुबन ।।२।।

समीर संगीत गाए, भ्रमर बीणा बजाए
सुरभि नर्त्तने थाए उषा निदेशे,
कुम्भाटुआ होइ भाट आरम्भिला स्तब पाठ
कळिंग अइला पाट मगध बेशे,
ललित मधुरे कहिला,
"उठ सती राज्य-राणि, राति पाहिला।" ।।३।।

१. आश्रममें प्रभात

चतुर्थ सर्ग

प्रस्फुटित कमलके समान नेत्रवाली मंगलमयी उषा जानकीके दर्शनकी अभिलाषा लेकर आई और करमें शबनम रूपी मोतियोंकी माला लेकर सीताके प्रांगणमें खड़ी होकर, मधुर वाणीसे बोली--"हे देवि ! भोर हो गया है, उठो दर्शन दो।" ॥१॥

सूर्यकी अरुण किरणोंके साथ गेरुआ वस्त्र पहनकर उषा आई है, मानो सुन्दर गम्भीर रूप धारणकर कोई योगेश्वरी ही सीताका दुख-दर्द दूर करनेके लिए स्वर्गसे अवतरित हुई है। वह आश्वासन देती हुई, नवजीवन प्रदान करनेके लिए सीताको बुलाती है--॥२॥

उषाका आदेश पाकर समीर गीत गाने लगा, भ्रमर वीणा बजाने लगे, सुरभि नाचने लगी। महोखा भाटका रूप धारणकर स्तवन पाठ करने लगा। श्रेष्ठ भाटके रूपमें कलिंग (श्यामा) आया और ललित कण्ठसे बोला--"हे राजरानी ! रात बीत गई, उठो।" ॥३॥

मुनि-मुखे बेद-स्वन पूर्ण कला श्यामबन
उठिला भेदि गगन उच्च ओंकार
बैकुण्ठे देइ तृपति अनन्त श्रुतिकि गति
बिहिला कि सरस्वती बीणा झंकार;
बेळुबेळ, बन उज्ज्वळ,
मंत्र बळे येन्हे बढ़ि आसिला बळ ।।४।।

एकाळे ब्रह्मचारिणी अनुकम्पा तपस्विनी
आसि जनकनन्दिनी पाशे गम्भीरे
बोइले, उठ बैदेहि, उषा सुकुमारदेही
आसिछि दर्शन देइ तोष बिधिरे,
तमसा रहिछि अनाईं
कोळ करि थरे सुख लभिबा पाईं ।।५।।

पद्मिनी-हृद-शिशिर-बिन्दुरे खर-रश्मिर
प्रतिबिम्ब परि, बीर राम मूरति
शोकजर्जरित चित्त फळके करि चित्रित
हेले आसनु उत्थित जानकी सती;
नमि अनुकम्पा पयरे
बन्दिले उषार पद सबिनयरे ।।६।।

बोइले ताकु प्रशंसि, "तुम्भे तिमिर बिध्वंसि
रबि-आगमन-शंसि हुअ संसारे,
तुम्भ कोमळ चरण करे ज्योति आहरण
तहिं याउंछि शरण दृढ़ आशारे;
शुभ्र सउरभ रसिके,
शुभ सम्पादिनी हुअ रघुबंशिके ।" ।।७।।

मुनिके मुखसे निःसृत वेद-मन्त्रकी मधुर ध्वनिसे सघन श्याम कानन गूंज उठा। ओंकारकी ध्वनि आकाशको भेदती हुई अन्तरिक्षकी ओर अग्रसर हो, बैकुण्ठके निवासियोंको आनन्दित कर पातालकी ओर अग्रसर हुई, मानो वह सरस्वतीकी वीणाकी झंकार ही हो। मन्त्रके प्रभावसे जिस प्रकार तेज प्रकाशित होता है, उसी प्रकार सूर्यके तेजसे बन प्रकाशमान हुआ। ।।४।।

इसी समय तपस्विनी अनुकम्पाने जनक-नन्दिनी जानकीके पास आकर कहा—"हे वैदेही! सुकुमारी उषा तुम्हारे द्वारपर खड़ी है, उठो दर्शन दो। तुमको भी गोदमें लेकर संतोष पानेके लिए रास्ता देख रही है।" ।।५।।

कमलपर पड़ी हुई शबनमकी बूंदों पर जैसे प्रखर किरणें प्रतिबिम्बित होती हैं, उसी प्रकार वीर रामचन्द्रकी मूर्त्तिको शोकाकुल हृदय रूपी पटपर चित्रित कर सती जानकी आसनसे उठीं। अनुकम्पाको प्रणाम करके विनयके साथ उषाकी चरण-वन्दना की ।।६।।

सीताने उषाकी प्रशंसा करते हुए कहा—"तुम अन्धकारको दूर करने वाली हो। तुम रविके आगमनका कारण हो। तुम्हारे जिन स्निग्ध चरणोंका अनुसरण करती हुई ज्योति आती है, उन्हीं चरणोंकी दृढ़ आशा कर मैं तुम्हारी शरण आती हूँ। हे शुभ्र-सौरभ-रसिके! तुम रघुवंशकी मंगलकारिणी बनो।" ।।७।।

उत्सुक हृदये रात्रि–शेषरे आश्रम-धात्री
तमसा निर्मळ-गात्री पबित्र-धारा
प्रांगणे कुसुम बिन्चि सुबासित नीर सिंचि
मंगल-प्रदीप रचि प्रभाती तारा,
मुहुर्मुहुः मीन-नयने
चाहुँथिला सीता-सती शुभागमने ।।८।।

उटजु तापसकन्या–गणंक आदर-बन्या
प्लाबने जगत-धन्या-सती रतन
बाहारि अबगाहने अनुकम्पांक गहणे
तमसा धार बहने कले गमन;
सतींकि तमसा अंकरे
घेनि स्नेहे आलिंगिला तरंग-करे ।।९।।

अमृत मधुर स्वरे भाषिला परितोषरे
"माआ गो, मो मानसरे न थिला आशा,
करिब अंके बिहार राजलक्ष्मी-हृदहार
सीता करि परिहार भोग-पिपासा,
भाग्यबती मोते संसारे
बोलिबे तो ' योगुं एका परशंसारे ।।१०।।

बने बने भ्रमि भ्रमि गण्ड कुहुके न भ्रमि
बहु बाधा अतिक्रमि स्वच्छ जीबने
अन्धार दुःख न गणि आलोक सुख न मणि
चालछि दूर सरणी नत बदने;
जनम करुछि सफळ
तोय-दाने तोषि तीरबासी-सकळ ।।११।।

निर्मलगात्री तमसा पवित्र धारा रूपी आँगनको सुगन्धित जलसे सींचकर, फूल बिछाकर तथा तारोंका दीप जलाकर अपने मीन-नयनोंसे, उत्सुकताके साथ तुम्हारे आगमनकी राह देख रही है ।।८।।

•

तापस कन्याओंके स्नेहमें डूबी, संसारमें श्रेष्ठ सती सीता अनुकम्पा आदिके साथ तमसामें स्नान करनेके लिए कुटियासे निकलीं । अपने तरंग रूपी करोंसे तमसाने सतीका आलिंगन किया ।।९।।

तमसाने मधुर वाणीसे कहा—"मैं परम सन्तुष्ट हूँ। हे बेटी! मुझे स्वप्नमें भी यह आशा न थी कि राजलक्ष्मी सीता सांसारिक भोग-विलासको छोड़कर जंगलमें आएँगी और मेरी गोदमें किलोलें करेंगी। केवल तुम्हारे कारण सारा संसार मुझे सौभाग्यवती मानेगा ।।१०।।

जंगल-जंगल भ्रमण करती हुई, जीवनमें नाना प्रकारके विघ्न-बाधाओंको सहन करती हुई, अन्धकारमें दुःख और प्रकाशमें सुख न मानकर सतत स्वच्छ रूपसे विनम्र चली जा रही हूँ। सभी तट-वासियोंका शोक मिटाकर उनको शीतल करती हूँ ।।११।।

मन्दाकिनी, गोदाबरी से सबु गुणे मो ' सरि
तथापि बर्धन करिछन्ति गौरब
लभि तो पबित्र पद–चिन्ह अक्षय सम्पद
दिबिषद-पद-प्रद अंग सौरभ;
ताहा थिला मोर बांछित,
तदभावे हेउथिलि मने लांछित " ।।१२।।

सीता बोइले, "पनीर-मधुर ए स्वच्छ नीर
नीर नुहें, जननीर क्षीर प्रत्यक्षे;
गिरि-स्तनु बिनिसृत होइ आसुछि अमृत–
धारा परि सीतामृतकलपा लक्षे,
ओहो तु त मो ' मा ए देशे,
मो दुःखे बिदीर्ण-बक्षा तमसा बेशे ।।१३।।

छेद भेदिअछि पृष्ठ से पाख हेउछि दृष्ट
तथापि सुताकु तुष्ट करिबा पाईं
फिटाइ स्नेह-लोचन प्रीति-मधुर-बचन
बिन्यासे चाटु रचन करू गेल्हाइ;
धन्य धन्य मा तो ' हृदय,
मो ' दुःख आतप पाईं बालुकामय " ।।१४।।

['तपस्विनी' से]

———————

मन्दाकिनी, गोदावरी नदियाँ मेरे ही समान हैं, किन्तु तुम्हारे पवित्र चरण-स्पर्शसे ही उनकी कीर्ति बढ़ी थी। वे देवताओंके पद-रजसे सुशोभित होती ही आई हैं। मेरी भी यही कामना थी और मैं इसके बिना अपनेको तुच्छ मानती थी।" ॥१२॥

सीताने कहा--"यह नीर स्वच्छ, सुवासित और मधुर है। यह नीर नहीं; बल्कि जननीका क्षीर है। पर्वत रूपी स्तनसे प्रवाहित हुई यह अमृतमयी धारा सीताके लिए अमृतके समान है। अहो! तू तो इस प्रदेशमें मेरे दुःखसे विदीर्ण हृदयां माँके समान है ॥१३॥

(तुम्हारे) हृदयमें ऐसा छेद हुआ है कि वह तुम्हारी पीठके आर-पार भी दिखाई पड़ता है। तथापि अपनी कन्याको सन्तुष्ट करनेके लिए स्नेहमयी दृष्टिसे निहारते हुए, प्रीतिपूर्ण मधुर वाणीसे मन बहलानेकी चेष्टा करती है। हे जननि! तेरा हृदय धन्य है! जिसके कारण मेरा महान दुःख बालु कण-सा प्रतीत होने लगा है।" ॥१४॥

२. सीतांक विलाप

सप्तम सर्ग

भिक्षा दिअन्ते बळे धरि मो कर
बिमाने बसाइला नेइ सत्वर,
कलि बिनय केते केते तर्जन,
न कला कर्णपात तहिं दुर्जन गो ।।१।।

जाणिलि बेश नुहँ गुणर चिन्ह
बाहारे साधुबेश, भितरे भिन्न ।
मणन्ति लोके सर्बशुभद धर्म,
के जाणे धर्म नाम बहइ यम गो ।।२।।

दक्षिण मुखे खल बाहिला रथ
कम्पाइ घनघोषे गगनपथ;
कान्दिलि येते येते उच्च आरबे,
बिलीन हेला रथ-घोष-गरभे गो ।।३।।

रथ शबदे भाषा हेब बिफल
जाणि पकाइदेलि भूषा सकल;
देखिलि नदीमाने होइ बिकल
शीर्ण शरीरे येन्हे हेले निश्चल गो ।।४।।

तनु संकोचि तुंग पादपचय
भिड़िले परस्परे लभि ता' भय;
अबनी क्रमे होइ गला नीरब,
लुचि रहिले मृग बिहंग सर्ब गो ।।५।।

३. सीताका विलाप

सप्तम सर्ग

[आश्रममें सीताका अतीतको स्मरण कर विलाप]

भिक्षा देते समय मुझे रावणने बलात् विमानमें शीघ्र बैठाया। मैंने कितनी ही अनुनय-विनय की और धमकियाँ भी दीं, लेकिन उस दुर्जन (रावण) ने ध्यान नहीं दिया ॥१॥

तब मैंने समझा कि वेशके अनुरूप गुण नहीं होता। सिर्फ उसका ऊपरी वेश ही साधुका है, परन्तु भीतरसे वह सर्वथा भिन्न है। लोग, धर्मको मंगलमय मानते हैं, लेकिन यह कौन जानता है कि यम भी धर्म कहलाता है ॥२॥

उस दुष्ट रावणने दक्षिणकी ओर आकाश मार्गको कम्पित करते हुए और तेज गर्जन करते हुए रथ चलाया। मैं उच्च स्वरसे विलाप करने लगी, लेकिन वह रथ-ध्वनि-गर्भमें विलीन हो गया ॥३॥

रथ-ध्वनिमें मेरी करुण ध्वनि विफल हो जाएगी यह जानकर मैंने शरीरसे सकल आभरण उतार कर फेंक दिए। मैंने देखा कि नदियाँ विकल होकर शीर्ण शरीर धारण कर मानो निश्चल हो गई ॥४॥

भयभीत होकर बड़े-बड़े वृक्ष अपना शरीर संकुचित कर आपसमें भिड़ने लगे। धीरे-धीरे पृथ्वी नीरव हो गई और पशु-पक्षी सब भयभीत होकर छिप गए ॥५॥

पूर्ब पश्चिम याम्य ककुभत्रय
क्रमे दिशिला गाढ़ नीलिमामय;
मही लक्षण किछि न हेला दृष्ट,
तहिं मध्यकु रथ बाहिला दुष्ट गो ।।६।।

अग्रे दिशिला दिगमूल उज्ज्वल,
क्रमे मणिलि ताकु बन-अनल;
येतिकि हेला रथ ता पाश पाश,
असंख्य ज्योतिपुञ्ज हेला प्रकाश गो ।।७।।

भाबिलि नभ तेजि तारा सकळ
दिबसे छन्ति रहि दळकु दळ;
बिधु बिरहे तेजि नभोमण्डळ
हृदये जाळुछन्ति बिरहानळ गो ।।८।।

किबा मो मर्त्यलीळा होइछि शेष,
शमनपुरे हेउअछि प्रबेश ?
देखिलि मनोहर अट्टाळीश्रेणी
दिशन्ति रम्य हेम-कळस घेनि गो ।।९।।

दिशिला क्रमे पुर–अट्टाळी बीथि,
नगर रञ्जिछन्ति स्वर–दीधिति,
स्वकरे हर्म्य शिर कळसमान
रषाणि करुछन्ति जाज्वल्यमान गो ।।१०।।

सेकाळे मने मोर हेला बिचार,
अटइ योगी निश्चे शमनचार;
कृतान्त पाश यिबि सदर्पे पशि
उन्चाइ दीप्त पति-भकति-असि गो ।।११।।

पूर्व, पश्चिम और दक्षिण-ये तीनों दिशाएँ क्रमशः घने अन्धकारमें विलीन हो गईं। अन्धकारके कारण पृथ्वीपर कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ा। ऐसे समयमें दुष्टने रथ चलाया ।।६।।

•

सामने कुछ उज्ज्वल आभा दिखलाई दी, जिसे मैंने दावानल ही समझा। रथ जितना ही समीप जाने लगा, उतनी ही उसकी तेजोमयी ज्योति प्रकाशित होने लगी ।।७।।

मैंने यह सोचा मानो उडुगण सब आकाश-मार्ग त्याग करके दिनामें झुण्ड के झुण्ड प्रकाशित हैं। मानो वे चन्द्रमाके विरहमें व्यथित होकर नभ-मण्डल छोड़कर हृदयमें विरहानल जला रहे हैं. . .।।८।।

अथवा मेरी सांसारिक लीला समाप्त हो चुकी है, इसलिए मैं मानो यमपुरमें प्रवेश कर रही हूँ। स्वर्ण कलश-युक्त सुन्दर दिखलाई पड़नेवाली बहुत सी इमारतें मैंने देखीं ।।९।।

मानो सूर्यने अपनी प्रखर किरणोंसे सोनेके उन कलशोंको माँजकर उज्ज्वल किया है ।।१०।।

उस समय मुझे ऐसा लगने लगा कि यह योगी निश्चय ही यमदूत है और मैं पति-भक्ति रूपी दीप्त तलवार ऊँची किए यमराजके सम्मुख सगर्व उपस्थित होनेवाली हूँ ।।११।।

ता' परे रघुपति मोते अणाइ
बोइले स्नेहशून्य नेत्रे अनाइ,
"कुसंगु बळि नाहिं जगते पाप,
कुसंगी संगे मिळे घोर सन्ताप गो ॥१२॥

कामान्ध दानबर पाप-भबने
थिलु, स्परशि थिब पाप तो मने,
न पारे करि आउ तोते ग्रहण,
ग्रहण कले हेब लोकगर्हण।" ॥१३॥

जळद जळ कले नीचे गमन
आउ कि ताकु रखि पारइ घन ?
अनळ शिखा परि अनळे दहि
हेले से जळ उदर्ध्वे घने मिशाइ गो ॥१४॥

भाबिलि, थिलि सिना धरि जीबन
सेबिबि बोलि प्रभु पदमचरण,
न हेबि यदि पदस्पर्श भाजन,
जीबने आउ मोर कि प्रयोजन गो ॥१५॥

दहिबि देह चाहिं चाहिं श्रीमुख
एथुँ अधिक मोर कि अछि सुख ?
दगध हेले देह, अबश्य प्राण
प्रभु श्रीअंगे याइ पाइब स्थान गो ॥१६॥

मो तनु दग्ध हेले हेबत खार,
ताहाकु कराइब पादपे सार,
से तरू काष्ठ देइ बदर्धकी हस्ते
कराइ देब प्रभु पादुका मोते हे ॥१७॥

['तपस्विनी'से]

उसके बाद रामचन्द्रजीने मुझसे स्नेह-रहित दृष्टिसे बुलाकर कहा—"कुसंगसे बढ़कर पाप संसारमें नहीं है और कुसंगीके साथ रहनेके कारण बहुत दुःख झेलना पड़ता है ।।१२।।

तू कामान्ध राक्षसके पापपूर्ण भवनमें थी, इसलिए पापने तेरे हृदयको स्पर्श किया होगा, अतः मैं तुझे ग्रहण नहीं कर सकता। यदि मैं तुझे ग्रहण करूँ, तो यह लोगोंके सामने बुरा मालूम होगा।" ।।१३।।

पानीकी धारा जब बादलसे अलग होकर नीचे गिर जाती है, तब क्या बादल फिर उसे रख सकता है ? यदि अग्नि शिखाके समान वह अपनेको जलाकर भस्म कर दे तो फिर वापस जाकर वह बादलमें मिल सकती है। ।।१४।।

मैंने सोचा कि प्रभुके पद्म चरणकी सेवाकी आशामें ही मैंने जीवन धारण किया था। अब यदि चरण छूनेके अधिकारके योग्य भी नहीं हूँ, तो इस जीवन धारणसे क्या प्रयोजन ? ।।१५।।

श्रीचरणोंकी ओर देखती हुई मैं अपने शरीर को जला दूँगी, क्योंकि इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या सुख है ! शरीरके जल जानेसे यह प्राण अवश्य प्रभुके श्रीअंगमें स्थान प्राप्त कर सकेगा, अर्थात् मिलकर एक हो जाएगा ।।१६।।

मेरा शरीर दग्ध होकर अवश्य राख होगा और वृक्षोंमें खादके रूपमें उपयोगी होगा। उस वृक्षकी लकड़ी (में स्थित मुझे) लेकर बढ़ई जब अपने कौशलसे प्रभुके लिए पादुका बनाएगा, उस समय भी मुझे प्रभुकी पद सेवाका सौभाग्य मिलेगा ही ।।१७।।

———————

३. ग्रीष्मे-वर्णन

अष्टम सर्ग

जीबने यउबन बढ़िला सम, बसन्त बढ़ि बने हेला ग्रीषम,
युबा शकति यथा हुए प्रखरा; प्रचण्डतर होइ आसिला खरा।
सुख-बिषय-भोगतृष्णार परि, सञ्चार कला मृगतृष्णा सुन्दरी।
तुळा उड़िला तेजि शाळमळी तरू, कृपण धन काळे उड़े खातरू।
पळास अंगे नाहिं पूर्ब सुरंग, अनित्य एहिपरि भब–प्रसंग,
तापे अधिकतर मल्ली फुटिला, अधिक बास तार अंगु छुटिला।
साधु हृदय तापे हुए अटळ, बरञ्च हुए शान्ति-यश प्रबळ;
कुटज अनाइला ताकु हरषे, साधब पाइ साधु अबश्य रसे।
एक हृदये दुहँ कले बिचार, ग्रीषमें करूथिबा बास सञ्चार;
बरषा हेले मही हेब शीतळ, शान्ति लभिबे जीब जन्तु सकळ
कदम्ब केतकी त बासकृपण, नुहन्ति, करिबे से लोकतर्पण;
अर्पण करि जन-रञ्जन भार, तेजिबा हसि-हसि तरू संसार।
उदण्ड कमळिनी उन्चाइ मथा, सहर्षे समर्थन करि से कथा;
बोइला मुहिं थाइ तुम्भर संगे, झासिबि काळ-सिन्धु-तुंग-तरंगे।

३. ग्रीष्म-वर्णन

अष्टम सर्ग

[आश्रमका ग्रीष्मकालीन प्रकृति-वर्णन]

जिस प्रकार जीवनमें यौवन बढ़ता है, उसी प्रकार बसन्त बढ़ते-बढ़ते ग्रीष्म रूपमें बदल गया। यौवन शक्ति जैसे तेजमय होती है, उसी प्रकार प्रचण्ड धूप धधकने लगी। विषय-भोगके सुखमें अतृप्तिके समान मृगतृष्णा रूपी सुन्दरी सञ्चरित हुई। सेमरकी रुई इस प्रकार उड़ती दिखती है, जिस प्रकार कंजूसका धन मौकेपर तिजोरीसे उड़ता है। जिस प्रकार पलासके फूलका रंग अब वह नहीं रहा, इसी प्रकार संसारकीसा रता भी अनित्य है। जिस प्रकार तेज धूप पाकर मोगरा अधिक फूलता है और अपनी सुगन्ध चारों ओर फैलाता है, उसी प्रकार कष्ट पाकर साधुका हृदय भी दृढ़ होता है, जिससे उन्हें यश और शान्ति मिलती है। बेला फूलको देखकर ब्रजमल्लिका आनन्दसे फूल उठती है, उसी प्रकार साधुको देखकर साधु प्रसन्न होता है। दोनोंने मिलकर यह निश्चय किया है कि हम दोनों तमाम ग्रीष्म ऋतु भर इसी प्रकार सुवास वितरण करती रहेंगी, तदनन्तर वर्षा होगी, पृथ्वी शीतल होगी और संसारके सब जीव शान्ति पाएँगे। कदम्ब और केवड़ा भी अपनी सुवासके लिए कंजूस नहीं हैं। वे भी जन-जनको आनन्द दान करनेवाले हैं। जन-मनके रञ्जन करनेका भार हमारे ऊपर है, हम उसको पूरा कर वनस्पति जन्मसे मुक्त होंगे। कमलिनीने प्रसन्न हो सिर उठा कर समर्थन करते हुए कहा—मैं भी काल-समुद्रकी ऊँची तरंगोंमें तुम लोगोंके साथ कूदूंगी।

୪. ପ୍ରଣୟାଙ୍କୁର

ପ୍ରଥମ ସର୍ଗ

ଜୟ ବେଦବ୍ୟାସ ଜୟ କାଳିଦାସ ଭାରତୀ-ପ୍ରିୟ-ନନ୍ଦନ,
ତୁମ୍ଭେ ଜ୍ଞାନଗୁରୁ କବିମଣ୍ଡଳିର ଲଲାଟ-ଶୋଭି-ଚନ୍ଦନ ।
ତୁମ୍ଭ ଚରଣରେ ଲଗାଇଛି ବିଧି ମୋ ହୃଦ-ଦୃଢ଼-ବନ୍ଧନ,
ତୁମ୍ଭ ପଛେ ଥାଇ ଭାରତୀ ଚରଣେ ବିନୟେ କରେଁ ବନ୍ଦନ ।
ଯେଉଁ ପଥେ ଗମି ଭ୍ରମିଛ ଗୁରୁ ହେ, ଭାରତୀ-କୁସୁମ-ବନେ,
ସେହି ପଥେ ଚାଲି ତୋଳିବି କୁସୁମ ପଡ଼ିବ ଯେତେ ନୟନେ ।
ନୟନେ ପଡ଼ିବ ଯତନେ ଯହିଁକି ନ ପାଇବ ମୋର ହସ୍ତ,
ସେ ଉଚ୍ଚ ଡାଳର କୁସୁମ ଚୟନେ ରହିବି ହୋଇ ନିରସ୍ତ ।
ନୋଳିଲା କୁସୁମେ ହାର ଗୁନ୍ଥି ଦେବି ଉତ୍କଳ-ଜନନୀ-ହୃଦେ,
ଭକ୍ତିରେ ଜନନୀ-ପାଦ-ପଦ୍ମେ ପୂଜି ମନ ମଜ୍ଜାଇବି ମୁଦେ ।।୧।।

ଶକୁନ୍ତଳା ଜଳା ସିଞ୍ଚି ଆରମ୍ଭିଲେ ନବ ମଲ୍ଲିକାର ମୂଳେ,
ମଧୁକର ଏକ ଉଡ଼ିଲା ଏକାଳେ ଯେ ଥିଲା ନିଆଳୀ ଫୁଲେ ।
ଉଡ଼ି ପୁଣି ବସି ବସେ ବାରମ୍ବାର ସୁନ୍ଦରୀ ମୁଖମଣ୍ଡଳେ,
ବିତାଡ଼ିତ ହେଲେ ଉଡ଼ି ଥାଏ ପୁଣି ମୁହୁର୍ମୁହୁ ଉଦର୍ଦ୍ଧ୍ୱ ତଳେ ।
ଦୀର୍ଘ ଗୁଣୁ ସ୍ୱରେ କେତେବେଳେ ଥରେ କରି ନିଏ ପ୍ରଦକ୍ଷିଣ,
ଯହିଁ ଯାଏ ତହିଁ ଥାଏ ଚପଳାର ନୟନ ପଲକହୀନ ।।୨।।

४. प्रणयांकुर

प्रथम सर्ग

हे भारतीके प्रिय पुत्र कालिदास और वेदव्यास ! तुम्हारी जय हो। तुम कवियोंके ज्ञानदाता गुरु हो एवं ललाटमें शोभित चन्दनके समान हो, तुम्हारे चरणोंमे विधिने मेरे हृदयका बन्धन लगाया है। तुम्हारा अनुकरणकर मैं भी उसी भारतीकी चरण-वन्दना विनयके साथ कर रहा हूँ। हे गुरु, आपने जिस मार्गसे भारतीके पुष्पबनमें भ्रमण किया है, मैं भी उस मार्गपर चलूँगा, तथा सामने आए हुए उन्हीं फूलोंको तोड़ूँगा; जिन-जिनपर मेरा हाथ पहुँच सकता है। जिनपर मेरा हाथ नहीं पहुँच सकता; यत्न करने पर भी उन ऊँची शाखाओंके पुष्पोंके चयनसे मैं वञ्चितही रहूँगा। मैं उन तोड़े हुए पुष्पोंकी माला गूँथकर अपनी उत्कल जननीके वक्षपर पहना दूँगा तथा भक्ति पूर्वक उसके चरण कमलोंमें अपने मनको लीन कर हर्षित होऊँगा ।।१।।

[शकुन्तलाका आश्रम उद्यान भ्रमण]

एक बार शकुन्तलाने मल्लिकाकी जड़में पानी डालना प्रारम्भ ही किया था कि उसी समय नव मल्लिका फूलोंपर बैठा हुआ भौंरा उड़ते हुए सुन्दरीके मुखपर आ बैठा। वह बार-बार उड़ता है और बैठता है, और हटा देनेसे फिर उड़ जाता है और फिर नीचे आ जाता है। कभी-कभी दीर्घ गुञ्जनके साथ मँडराने लगता है। फल-स्वरूप इस अबलाकी अपलक दृष्टि, वह जहाँ-जहाँ जाता है, उसका अनुसरण करती है ।।२।।

कर चालि कइँ उठि बुलि बक्ष डेरि कटि ग्रीबा भांगि,
अळि तड़ि तड़ि नर्त्तकी भंगिरे पड़िथाए चपळांगी ।
ए नृत्य दर्शन भाग्य लभिबाकु केहि त न थिले कति,
सुरांगना नृत्य नीरस मणन्ते देखुथिले सुरपति ।
लज्जा बिरहित स्वार्थ बिजड़ित त्रिदश-बनिता-नाट,
सारल्य-शोभित लास्य केबे काहिँ देखिथान्ति सुरराट ?
न पारिले देखि अश्विनी-प्रणय-चळचित्त बिबस्वान,
घन-पल्लबित-तरू-अन्तराळ रक्षा कला तांक मान
केबळ हस्तिना-सार्बभौम चाहिँ होइगले स्तम्भीभूत,
ब्रबि न याइ या पबि कले हृद ए कथा एका अदभुत ।
अधीरे सुन्दरी सखीँकि डाकिला—"आस-आस प्राणमित,"
से गम्भीर बाणी होइगला सेहि लास्य-सहचर-गीत ।
बनु प्रतिध्वनी उठि हेला सेहि रम्य-स्वर-सहचरी,
चन्द्रच्युत-सुधा-मोहन मन्त्र कि मन्त्रिदेला हर-अरि !
सजाइथिला बा बीणा काम-बधु बजाइदेला झंकार,
हजाइले राजा धइर्य्य-मणि ता कुसुम-धनु-टंकार ।।३।।

['प्रणय बल्लरी' से]

वह हाथ हिलाती है, निहारती है, गर्दन घुमाती है, कमर झुकाती है, अतः उस भोंरेको हटानेकी चेष्टामें नृत्य भावों और मुद्राओंका सञ्चार हो जाता है। इस नृत्यको देखकर अपनेको सौभाग्यवान माननेवाला वहाँ कोई नहीं था। देव-बालाओंके नृत्यको नीरस मानकर इन्द्र भी इसे देख रहे थे। सुर-बालाओंके नृत्य लज्जास्पद तथा स्वार्थ पूर्ण ही जो ठहरे, इन्द्रने कभी इस प्रकार सरलतासे सुशोभित नृत्य देखा था? कलशीकी प्रणय प्रणालीको सूर्यने भी नहीं देखा, क्योंकि सघन पल्लवोंकी छायाने सूर्यको छिपाकर उसके सम्मानकी रक्षा की। सिर्फ हस्तिनापुरके महाराज इसे देखकर स्तब्ध हो गए। आश्चर्य है कि उन्होंने अपने हृदयको कठोर कैसे बना लिया। जब व्याकुल होकर सुन्दरीने सहेलियोंको पुकारा, "हे सखियो आओ-आओ।" उस समय उसकी वाणी नृत्यकी सहचरी संगीत बन गई। वही ध्वनि वनमे गूंज उठी और स्वरकी साथिनी बनी। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कामदेवने चन्द्रसे सुधा लाकर उसे सुधा-मन्त्रसे मन्त्रित किया हो तथा रति द्वारा सजाए वीणाके तारोंको किसीने छू लिया हो। इस झंकारको कामदेवके पुष्प धनुषकी टंकार समझकर राजा धैर्य-च्युत हो गए ।।३।।

———

५. प्रणय पल्लव

द्वितीय सर्ग

हृदय गलारु बिबेक लोड़िला अंग-सम्मिळन-पथ,
उभा होइ मन बोइला, "बिबेक पूरिछि तो मनोरथ।
प्रत्यक्ष देखिछु होइ याइअछि करे कर सम्मिळन,
कर समर्पणे बुझिछु अमत न थिला बाळार मन।
मनरे सम्मति थिबा बिषयरे प्रमाण यदयपि चाहुँ,
कुरुबक कंटा लगाइ चाहिंला, कह कि करन्ता आउ ?
बोलिबु अबा तु बाळिकार मन अधीन अटे पितार,
बाळिका नुहँ से युबती, ता मने नाहिं पितृ-अधिकार।
स्वाधीन युबती स्वाधीन मनरे करिछि कर अर्पण,
साक्षी सखीद्वय, साक्षी ता हृदय साक्षी पाख शाखीगण।

बिबेक–" सेहि स्वेच्छाचार शुणि मुनिबर हुअन्ति यद्यपि क्रुद्ध ?"

मन–" चिर तपःशीळ मुनिक बिबेक नुहें कि तोठुँ प्रबुद्ध ?"

बिबेक––"से कर बन्धने हुळहुळि काहिं ढळा होइ नाहिं पाणि",

मन–" सारिका-बदने हुळहुळि देले सहर्षे प्रकृतिराणी।
जाणि न पारिलु, सिक्त होइथिला रमणी-हस्त-कमळ,
स्वेद या माणिलु, निजे कुशधर ढाळिथिले पूत जळ।"

५. प्रणय पल्लव

द्वितीय सर्ग

[दुष्यन्तके हृदयमें द्वन्द्व]

हृदय खो जानेसे विवेक दैहिक मिलनकी राह ढूँढ़ने लगा। उस समय मनने उपस्थित होकर कहा——हे विवेक, तेरी इच्छा पूर्ण हुई। हाथोंमें हाथ मिला हुआ है, यह प्रत्यक्ष दिख रहा है। हाथ अर्पण करते समय तूने यह समझा कि वह नाराज नहीं थी और सम्मतिके लिए यदि प्रमाण चाहता है, तो कुरुबकने (साड़ीमें) काँटे उलझा मुँह फेरकर देखा है। अब बताओ वह और क्या कर सकती है। तू यह कह सकता है कि कन्याका मन पिताके अधीन है। लेकिन वह युवती है, बालिका नहीं। युवतीके मनपर पिताका अधिकार नहीं रहता। इस स्वाधीन युवतीने, स्वाधीन भावसे, हस्त-अर्पण किया है। इसकी साक्षी देनेवाली हैं दो सहेलियाँ, उसका अपना हृदय तथा आस-पासके वृक्ष और लताएँ।

विवेक——'इस स्वेच्छाचार कर्मको सुनकर यदि महर्षि क्रुद्ध होंगे तो?'

मन——'चिर तपस्वी मुनिका हृदय क्या तुझसे अधिक विशाल नहीं है?'

विवेक——'उस कर बन्धनमें न उलू ध्वनि की गई, न जलार्घ्य ही दिया गया था?'

मन——'प्रकृति देवीने मैनाके मुखसे प्रसन्नताकी उलू ध्वनि की है। क्या तू नहीं जान पाया कि रमणीका कर-कमल गीला था, जिसे शायद तूने पसीना माना! पर वह स्वयं ब्रह्माके द्वारा ढाला गया पवित्र जल है।'

बिबेक–"द्विज त न थिले, किए उच्चारिला बेद मन्त्र आदि कथा ?"

मन–"बसन्त कोकिळ उच्चे भाषुथिला, 'श्रीरामस्य सीता यथा' "

बिबेक–"स्वच्छन्दे अबळा कर धरिबार नुहइँ कि बलात्कार ?"

मन–"प्रणये युबती कर याचि देबा सम्मति नाहिँ लज्जार ।
प्रणय-राज्यरे प्रणयिर वळ प्रणयिनी लाड़ु थाए,
घन संघर्षण ब्यतीत बिद्युत कोळकु तार न याए ।"

बिबेक–"घनबळे येबे प्रीति बिद्युतर गर्जन काहिँकि भीम ?"

मन–"गर्जन कि ताहा जगते बाजइ दम्पति-प्रेम-डिण्डिम ?"
हृदय बोइला, "मुँ यहिँ याइछि" तहिँकि न गले अंग,
बिषम-बिरह-बिषे होइयिब जीबनर सुखभंग ।

['प्रणय बल्लरी' से]

विवेक—'वहाँ तो कोई ब्राह्मण नहीं था, वेद मन्त्र आदिका उच्चारण किसने किया ?'

मन—'बसन्त कोकिलने मानो ऊँचे स्वरोंमें मन्त्रोंका पाठ किया- 'श्रीरामस्य सीता यथा।'

विवेक—'सहज ही किसी अबलाका हाथ पकड़ना क्या बलात्कार नहीं है ?'

मन—'प्रणय कालमें युवतीको हाथ देनेमें लज्जा नहीं है। प्रेमके राज्यमें प्रेमिका प्रेमीकी संघर्ष शक्तिको ढूँढ़ती रहती है। यदि बादलोंमें संघर्ष न हो तो बिजली उसके अंकमें नहीं दिखलाई पड़ती।'

विवेक—'मेघ और दामिनीमें अगर प्रीति है तो गर्जन क्यों ?'

मन—'यह भीम गर्ज्जन नहीं है—संसारमें यह प्रीतिका डिण्डिम है।' हृदयने कहा—'मैं वहाँ जा रहा हूँ जहाँ शरीरका सहयोग न होनेसे विरह रूपी विषसे जीवनकी सरसता नष्ट हो जाएगी।'

———

६. प्रणय प्रसून

तृतीय सर्ग

प्रियम्बदा हसि अनसूया प्रति बोइला, थाउ तो' हार,
मुँ याहा जाणइ गाइलि, तु एबे गाउ कि ना एक बार ?"
अनसूया हसि बोइला, 'तो गीत, परि नुहँइ मो' गीत,
मुँ गीत गाइले पराण देबता होइयिबे उपनीत ।।१।।

हार नोहिथिले कि देइ पूजिब शकुन्तळा प्राणेश्वरे ?"
शकुन्तला चित्त आनेथिला, श्रुति न थिला तांक भाषरे ।
प्रियम्बदा ताहा जाणि शकुन्तळा-केश सजाड़िबा छळे
पुष्प आभरणे मण्डिदेला तार केश कर्ण कउशळे ।।२।।

अनसूया एणे अबसर पाइ पूर्ण करिदेला हार,
प्रियम्बदा पूणि बोइला, "सजनि गाअ एबे एक बार ।"
अनसूया समे बसि हसि करि सजनीकि साबधान,
"देख आसियिबे पराण-देबता', बोलि आरम्भिला गान ।।३।।

चूत पक्व हेले कोकिळ आसइ भाषइ मधुर भाषा,
पुण्य पक्व हेले पराण देबता पूरण करन्ति आशा ।
निर्मळ गगने चन्द्र थिले सिना दिशन्ति कर-दर्पणे,
निर्मळ पीरति जात होइथिले पाशकु आसन्ति जने ।।४।।

सुजन प्रकृति लभइ बिकृति शुणा नाहिं काळे काळे,
से कथा अन्यथा हेबार ब्यबस्था अछि कि मो सखी भाले ?
रत्न-परीक्षक रतन पाइले देइ कि पारइ छाड़ि ?
बिकशित फुल हस्तरे पड़िले के देइछि पदे माड़ि ?।।५।।

६. प्रणय प्रसून

तृतीय सर्ग

[राजा दुष्यन्तके स्वागतकी कल्पना]

प्रियम्वदाने हँसकर अनसूयासे कहा—'अपनी माला रख दे।' मुझे जो मालूम था मैंने गाया, अब तू भी एक बार गा। अनसूयाने हँस कर कहा—'मेरा गीत तेरे जैसा नहीं हैं। अभी मेरे गीत गानेसे प्राण-देवता उपस्थित हो जाएँगे' ।।१।।

मालाके बिना क्या अर्पितकर शकुन्तला प्राणेश्वरकी पूजा करेगी? शकुन्तलाका ध्यान दूसरी ओर था, इसलिए उसने यह वार्तालाप नहीं सुना। प्रियम्वदा यह जानकर शकुन्तलाके केश सँवारने लगी तथा कौशलसे फूलोंके आभरणों द्वारा उनका केश विन्यास किया ।।२।।

इस अवसरपर अनसूयाने माला पूरी कर दी। प्रियम्वदाने फिर कहा—'हे सहेली, अब तो एक बार गाओ।' अनसूयाने हँसते हुए बैठकर सखीको सावधान कर दिया और कहा—'देखो, प्राण-देवता आ जाएगे!' यह कहकर उसने गाना प्रारम्भ कर दिया ।।३।।

आमके पक जानेसे कोयल आती है और मधुर स्वरसे गाती है। इसी प्रकार पुष्पके पक जानेपर प्राण-देवता आ कर अभिलाषा पूर्ण करते हैं। जिस प्रकार हाथमें धरे हुए आइनेमें निर्मल आकाशका चन्द्र दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार शुद्ध प्रीति प्राप्त होनेपर लोग पास आते हैं ।।४।।

सुजनोंकी प्रकृतिका विकृत होना कभी सुना नहीं गया। लेकिन क्या इस उक्तिका विपरीत होना मेरी सखीके भाग्यमें है? रत्न प्राप्त होनेपर जौहरी क्या उसे छोड़ सकता है? विकसित फूलके प्राप्त होनेपर क्या कोई उसे पैरोंसे कुचलता है? ।।५।।

रसना बिकृत न थिले अमृत काहाकु लागिछि पिता ?
या' कणा लभिले बिशुष्क बल्लरी होइयाए पल्लबिता ।
आस मो' सखीर पराण-देबता, कार्हिकि लुचिछ हृदे ?
सम्मुखरे थरे बिराजित हुअ मो' सखी पूजिब मुदे ।" ।।६।।

'गान दिअ रखि' प्रियम्बदा सखी बोइला परिहासरे,
'बिद्युत बेगरे आसिलेणि नृप तो दद्दुर-बर स्वरे ।'
'आसिलेणि नृप' शबदे चमकि शकुन्तळा बेला चाहिं,
निकुञ्ज दुआरे उभा होइछन्ति प्राणप्रिय नरसाइँ ।।७।।

['प्रणय बल्लरी' से]

———————

जिस अमृतके प्राप्त होनेसे शुष्क वल्लरी भी पल्लवित हो जाती है, वह अमृत बिना रसनाकी विकृतिके क्या कभी किसीको कटु लग सकता है? हे मेरी सखीके प्राण-देवता! आओ, हृदयमें क्यों छिपे हो? एक बार सामने आओ, सम्मुख आनेपर मेरी सखी तुम्हारी पूजा करेगी ।।६।।

प्रियम्वदाने हँसकर कहा—"गाना, बन्द करो" तुम्हारा मेढक-सा स्वर सुन कर 'महाराज आ गए हैं। महाराज आ गए हैं' यह सुनकर शकुन्तलाने चौंककर देखा, निकुञ्ज द्वार पर प्राण प्रिय राजा खड़े है ।।७।।

———

७. प्रणय सौरभ

चतुर्थ सर्ग

एकाळे मुनीन्द्र आसि स्नेहदृष्टि देइ शकुन्तळा प्रति,
बिचारिले मने शकुन्तळाहीन हेब मो बन सम्प्रति ।
से बिचारे हृद बिक्षोभित होइ गला मुनिबरंकर,
मृणाळ-लाळसी गज प्रबेशिले येसने कमळाकर ।
हृद आन्दोळने नयनयुगळे जळ हेला ढळ ढळ,
बिकम्पित सरे स्वतः आसिथाए जळज-दळकु जळ ।
सेहि काळे यदि कथा कहिथान्ते अश्रु याइथान्ता बहि,
पान्थतरू देहे पथ फिटिगले पान्थ कि पारइ रहि ?
समय पाइले जीबने प्रबृत्ति फुटि पड़िथाए आसि,
प्रबृत्ति बर्जित के अछि जगते कि गृही कि बनबासी ? ।।१।।

बसि मुनि पाशे सुताकु बसाइ क्षणे स्थिर करि मन,
सस्नेहे बोइले, "माआ गो, तु आजि गमिबु पति सदन ।
थिलु तपोबने शान्तिर भबने सखी संगे खेळि रंगे,
पशिबु एथर सम्पत्ति-सलिळ-संसार-सिन्धु-तरंगे ।
नाब बिना केहि सागरे पशिले लभइ घोर बिपद,
संसार-सागर पाइँ महापोत एकमात्र स्वामि-पद ।
नारीमानंकर स्वामीटि ईश्वर स्वामिक चरण स्वर्ग,
लक्ष्मी सदा पतिब्रतार संगिनी स्वामि-प्रीति-अपबर्ग ।
स्वामी गुरू स्वामी परम बान्धब स्वामि-सेबा नारीधर्म,
स्वामि-पदे भक्ति अर्च्चनारे मति अर्पि तु करिबु कर्म्म ।।२।।

७. प्रणय सौरभ

चतुर्थ सर्ग

[मुनिका शकुन्तलाको उपदेश]

इसी समय महर्षिने आकर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे शकुन्तलाको देखकर, मनमें विचार किया कि शीघ्र ही यह वन शकुन्तला विहीन हो जाएगा। इस विचारसे महर्षिके हृदयमें हलचल मच गई, मृणालके लोभी हाथीके कमल वनमें प्रवेश करनेसे जिस प्रकार हलचल मच जाती है, ठीक उसी प्रकार हृदयमें हलचल मचनेके कारण मुनिकी आँखोंमें पानी छलकने लगा। जिस प्रकार चञ्चल तालाबमें कमलके पत्तोंपर पानी अपने आप पहुँचता है, उसी प्रकार बातचीत करते-करते अनायास ही उनकी आँखोंसे अश्रु-धार बहने लगी। जिस प्रकार मार्गमें तरु आ जानेसे पथिक रुक नहीं सकता, उसी प्रकार समय आनेपर जीवनमें प्रवृत्तिका विकास होता है। गृहस्थ और बनवासी दोनों ही इस संसारकी प्रवृत्तिसे अलग नहीं हो पाते हैं ।।१।।

महर्षिने मनको स्थिरकर कन्याको पास बैठाया और स्नेहपूर्ण भावसे कहा—"मेरी बेटी, आज तू पतिके घर जाएगी। आज तक तू शान्त तपोवनमें सहेलियोंके साथ खेलती थी। अब तुझे सम्पदापूर्ण संसार रूपी सागरमें प्रवेश करना होगा। यदि कोई बिना नावके सागरमें प्रवेश करे तो घोर विपत्तिमें पड़ जाता है। संसार रूपी सागरको पार करनेके लिए स्वामी-पद ही एकमात्र महा नौका है। स्वामी ही नारीका ईश्वर माना जाता है और स्वामी-पद नारीके लिए स्वर्गके समान है। लक्ष्मी हमेशा पतिव्रताके साथ रहती है और स्वामी-प्रेमसे अपवर्गका सुख मिलता है। स्वामी श्रेष्ठ गुरु और मित्र होता है। स्वामीकी सेवा करना नारीका धर्म है, इसलिए स्वामीके चरणोंमें ध्यान अर्पित कर भक्तिपूर्वक अपना काम करना ।।२।।

स्वामी या कहिबे दुष्कर हेलेहेँ पाळने हेबु तत्पर,
थरे या बारिबे आउ तहिं केबे हेबु नाहिं अग्रसर ।
दुःख थिले मने दूर करिबु ता स्वामिदरशन मात्र,
परिहास कले तांकु न मणिबु प्रति-परिहास-पात्र ।
स्वामिक भोजन परे तु भुन्जिबु शोइबु शयन परे,
स्वामिकर शय्या तेजिबा पूर्बरू उठुथिबु प्रत्युषरे ।
अबसर देबु नाहिं तो नेत्रकु पर पुंस निरीक्षणे,
सोदर हेलेहें निर्जने निकटे रहि देबु नाहिं क्षणे ।
स्वामी येबे रोष करिबे अथबा करिबे यदि भर्त्सना,
से दोष न घेनि नत शिरे सहि करिबु तांक अर्च्चना ।।३।।

निज करे रान्धि निजे देउथिबु पतिंकि अन्न ब्यञ्जन,
भोजन समये पाशे उभा होइ चाळिबु धरि ब्यजन ।
स्वामि-सेवा कार्य्ये नारी प्रतिनिधि कदापि करिबु नाहिं,
बिना बेतनर परिचारिकाकु धरुँ देबु घउड़ाइ ।
स्वामी तो अबनी-भार बहिछन्ति तो शिरे तांक चरण,
केते धैर्य तोहो पाइँ प्रयोजन रखिबु सदा स्मरण ।
बास भूषणर गर्ब न करिबु अबा तहिँ पाइँ अळि,
याहा देबे तोषे सन्तोषे घेनिबु जाणिबु ताहा तो भळि ।
शाशुंक चरण सेबुथिबु निति गृहर देबता मणि,
शाशुटि स्वामिर पूजा- सिंहासन सर्ब सम्पदर खणि ।।४।।

नणन्द अळिरे केबे न चळिबु अधिके करिबु स्नेह,
बिमना हेले से कोळकु आणिबु आउँसि ता मुख देह ।
आउ येते पुर-नारी थिबे तांकु करिबु भगिनी ज्ञान,
से कथा कदापि न करिबु यहिँ हेब तांक अपमान ।
गुरूजन केहि पाशकु आसिले उठिबु तेजि आसन,
उच्चासन देइ बन्दि सबिनये करिबु मृदु भाषण ।
उच्च हास केबे न करिबु पुणि न करिबु उपहास,
परिहास छळे करिबु नाहिँटि सखीजन मान ह्रास ।
निजे परिष्कृत थाइ निज गृह रखिथिबु परिष्कार,
परिजनंकर दुःख शुणुथिबु करूथिबु प्रतीकार ।।५।।

स्वामीकी आज्ञा कठिन होनेपर भी तू उसे तत्परतासे पालन करना। एकाध बार यदि नाराज भी हो जाएँ तो उसपर कभी ध्यान न देना। स्वामीको देखते ही हृदयकी वेदनाको भूल जाना और परिहास करनेपर भी उन्हें परिहासके योग्य न समझना। स्वामीके भोजन करनेके पश्चात् तू भोजन करना और शयन करनेके बाद ही सोना। सुबह स्वामीके बिस्तर छोड़नेसे पहले ही तुझे उठ जाना चाहिए। अन्य पुरुषोंको देखनेके लिए कभी अपनी आँखोंको अवसर न देना तथा सगे-सहोदरोंको भी एकान्तमें पास रहनेका अवसर न देना। स्वामी यदि रूठ जाएँ या निन्दा करें, तो भी उनसे नाराज न होकर उसे सहन करना और उनकी अर्चना करना ।।३।।

अपने हाथसे भोजन बनाकर स्वयं ही स्वामीको खिलाना और खाते समय पास रह कर पंखा झलना। स्वामीकी परिचर्याके लिए कभी भी दूसरी नारीको नियुक्त न करना तथा वेतन-हीन परिचारिकाको घरसे भगा देना। तेरे स्वामी, जिन्होंने सारी पृथ्वीका भार ग्रहण किया है, उन्हींके चरण तेरे सिरपर हैं, इसलिए स्मरण रखना कि तुझे अत्यधिक धैर्यकी आवश्यकता है। वस्त्राभूषणोंकी याचना तथा उनपर गर्व न करना, जो भी दें उसे अपने उपयुक्त समझकर प्रसन्नताके साथ ग्रहण करना। गृह-देवता मानकर रोज सासकी चरण-सेवा करना। सास ही स्वामीकी पूजा सिंहासनका और सर्व सम्पदाओंकी खान है ।।४।।

ननदके हठ करनेपर न खीझना; बल्कि अधिक स्नेह करना। नाराज होनेपर हाथ-मुख सहला कर उसे गोदमें ले लेना। और भी जितनी परिचित नारियाँ हों, उन्हें भी बहन-सी मानना। जिससे उनका अपमान हो, ऐसा काम कभी भी न करना। बड़ोंको आते हुए देख उनके सम्मानार्थ आसन छोड़ देना और उनको उच्चासन देकर उनसे विनयके साथ मधुर सम्भाषण करना। कभी अट्टहास न करना और कभी किसीका उपहास भी न करना। परिहासमें भी कभी किसी सहेलीका अपमान न करना। स्वयं स्वच्छ रह कर अपने घर-बारको भी स्वच्छ रखना। परिजनोंका दुःख सुनना और उसका निवारण करना ।।५।।

अनाहूत होइ आसि केहि तोर अयथा प्रशंसा कले,
जाणिथिबु तार आगमन तोते ठकिबाकु कउशळे ।
स्वामी दोष, शेष जन्माइबाकु तो बर्णिब आसि ये नारी,
ता कथा बिषम बिष मणिथिळु से एका तोर भगारि ।
एते दिन याए मणिथिळु प्रिय सम्पत्ति तो तपोबन,
एथर मणिबु अखिळ-अबनी हेला तोर प्रियधन ।
तपोबन-मही-रूह-गत स्नेह महीरे करिबु न्यस्त,
मृग-मृगी-गत ममता करिबु मानब-समाज गत ।
स्वामी तोर ऋषि स्वरूप मण्डित करिछन्ति राज्याश्रम,
से आश्रम-नीति रक्षणे निजर जीबन करिबु क्षम ।" ॥६॥

['प्रणय बल्लरी' से]

यदि कोई बिना बुलाए आकर तुम्हारी प्रशंसा करे, तो उसका आगमन तेरे लिए हानिकारक ही होगा—ऐसा मानना। स्वामीपर रुष्ट होनेके लिए यदि कोई नारी तेरे सामने उनका दोष-वर्णन करे, तो उसकी बातको जहर-सा मानना और उसे वैरिन-सी समझना। तूने आज तक इस तपोवनको अपना प्रिय धन माना था, लेकिन आजसे तू सारे संसारको अपना प्रिय धन मानेगी। तेरा वह स्नेह जो अब तक तपोवनके वृक्षोंको प्राप्त था, अब उसे समस्त विश्वपर न्यौछावर करना होगा और मृग-मृगीको दी जानेवाली ममताको सारे मानव समाजको देना होगा। तेरे स्वामी राज्याश्रमकी रक्षामें ऋषिके समान हैं, तुझे उस आश्रमकी नीतिकी रक्षाके लिए अपने जीवनको योग्य बनाना होगा ॥६॥

———————

८. प्रणय फल

षष्ठ सर्ग

शिशिर-सदने जन्मिला नन्दन मनोहर रूपबन्त,
ता देखि शिशिर आनन्दे अधीर हेला येन्हे उनमत्त।
स्थूळ उर्ण-बास बाछि-बाछि देला पेड़ि सकळकु दान,
सुपक्व गोधूम-राशि दाने कला दात्रभोजि समाधान।
इक्षु-दण्ड-मान खण्ड-खण्ड करि क्षेपिला केदार-गर्भे,
कुसुम-कुसुम-रञ्जित बसन पाइले रसिक सर्बे।
दिगे-दिगे देला हरिद्रारञ्जित मधुमय शुभ पत्र,
आतप तापित जने बितरिला लक्ष लक्ष आतपत्र,
गगनचारिंकि देबापाइँ पत्र नेला चक्र-पबमान,
करिनेला पथ धूळि-बिरचित भँउरी-खम्ब-सोपान।
निर्बासित पद्म-सबुकु आणिला हृदे होइ दयायुक्त,
शीतबिकम्पित प्रभातकु कला कुज़्झटिका-कारामुक्त।
रात्रि भोगुथिला सुदीर्घ समय हसन्ती बहन दण्ड,
क्षमा करि ताकु पुरस्कार देला चन्द्रिका-पीयुष-खण्ड।
दिगंगनामाने हटि हटि नेले पातळ-पाटळ-पाट,
चिर-ज्योति-लोभी ज्योतिष्क-मण्डळ जूर कले ज्योति-हाट।
सुनारी खर्जुर रहिले सुबर्ण-हार संगठने ब्यस्त,
चन्द्रातप पाइँ शळ्मळिए हेले अहोरात्र सूचि-हस्त।

['प्रणय बल्लरी' से]

८. प्रणय फल

षष्ठ सर्ग

[भरतके जन्मपर प्रकृतिका आनन्द]

शिशिर कालमें वनमें सुन्दर रूपवान पुत्रने जन्म लिया, उसे देखकर शिशिरके हृदयमें अत्यन्त आनन्दका प्रादुर्भाव हुआ। मानो ऊनी कपड़े सन्दूकोंको दान कर दिए गए (रख दिए गए)। पके हुए गेहूँसे ब्राह्मण-भोजन कराया गया, गन्नेको टुकड़े-टुकड़े कर खेतोंमें बोया गया। रसिक लोगोंको नाना फूलोंके रंगोंके वस्त्र-दान स्वरूप मिले। सूख कर गिरे हुए पीले पत्ते मानो निमन्त्रण लेकर चारों दिशाओंकी ओर चले और धूपसे तपे लोगोंका ताप हरनेके लिए ताड़-पत्र दान किए गए। और बवडंर (वात्याचक्र) ने गगनचारियोंको देनेके लिए पत्र लिया। ऐसा लगने लगा मानो बवंडरने आकाश तक जानेके लिए धूलका एक खम्भा ही निर्मित कर लिया हो। कुम्हलाए हुए कमलोंको मानो दयार्द्र हो लौटा लाया। शीतकालीन प्रभातको कुहरेके बन्धनसे मुक्त किया। लम्बी रात, मानो अँगीठीको लेकर दण्ड भोग रही थी; उसे क्षमा कर, चन्द्रिका रूपी अमृतका उसे दान किया। दिग् वधुओंने हठ करके लाल झीने वस्त्र लिए, चिर ज्योतिकामी तारा-गण हाटसे ज्योति हरण करके सुनारी* और खजूर, सोनेका हार गूँथनेमें व्यस्त हैं। सेमर वृन्द सुन्दर चँदोवा लगानेके लिए करमें सूई ले प्रस्तुत है।

---

* **सुनारी**—एक वृक्ष विशेष, इसमें सहजनके-जैसे लम्बे फल लगते है और पीले रंगके बहुत मुलायम फूल फूलते हैं।

९. उत्कळ लक्ष्मी

८

जय गो उत्कळ-लक्ष्मी एकमात्र सुन्दरी तु बसुधारे,
प्राकृतिक शोभा-राशि रहिछन्ति तो अंगरे एकाधारे।
तोहो बास पाइँ अछि केते तुंग सुन्दर शैळ शिबिर,
दृश्यचय यार बर्णनाकरणे शकति नाहिं कबिर।
प्रिय मृग मृगी बुलुछन्ति तोर तम्बु तळ भूमिखण्डे,
बुलुछन्ति मत्त मतंगजयूथ दानबारिप्लुतगण्डे।
तो बिहार पाइँ स्थाने-स्थाने केते रम्य उपबनमान,
बिबिध सुबास फुले पूर्ण होइ रहिअछि बिद्यमान ।।१।।

काहिं गिरितळ निबिड़ कानने तो पाळित जन्तुगण,
अति प्रमोदरे दळ दळ होइ करुछन्ति बिचरण।
काहिं धेनु पल नब दुर्बादळ-श्यामळ धरणी बक्षे,
चरि चरि पुच्छ-चामर ढाळन्ति एका तोहो सेबा लक्षे।
काहिं कुसुमित लतादोळिमान होइअछि सुसज्जित,
तोते दोळाइबा पाइँ बिहंगमे बसि गाउछन्ति गीत।
काहिं सुशीतळ धबळ उपळ होइछि पलंकयित,
पल्लब-ब्यजन धरि तरुगण चउदिगे दण्डायित।
चिलिका अंशुपा अटन्ति परा तो प्रिय केळिसरोबर,
तहिं मध्ये केते केते गिरि केळि-मण्डप अति सुन्दर ।।२।।

९. उत्कल लक्ष्मी

हे उत्कल लक्ष्मी ! विश्वकी एकमात्र सुन्दरी ! ! तेरी जय हो ! ! ! एक ही साथ प्रकृतिकी शोभाराशिमें तेरी गोद पूर्ण है। ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंके ये शिविर, तेरे निवासके कारण कितने भले लगने लगे हैं, जिसके सौन्दर्यका वर्णन करनेमें कवि भी असमर्थ है। प्रिय पशुगण तेरी भूमिपर विचरण कर रहे हैं। दान-वारिसे भीगे हुए कपोलवाले, मतवाले हाथियोंके समूह घूम रहे हैं। तेरे विहारके लिए जगह-जगहपर रमणीक पुष्प-वाटिकाएँ हैं, जो विविध सुगन्ध युक्त फूलोंसे भरी हुई विद्यमान हैं ॥१॥

पर्वतोंके पास घने जंगलोंमें तेरे पालतू पशु झुण्ड-के-झुण्ड प्रसन्न होकर घूम रहे हैं। कहीं गायें खेतोंसे नव दूर्वा खाकर प्रसन्नताके साथ तेरे लिए पूँछको चँवर-सी डुला रही हैं; और कहीं फूलोंसे लदी लताओंके बने हुए झूले सुशोभित हो रहे हैं। तुझे झुलानेके लिए पक्षीगण बैठ कर गीत गा रहे हैं। कहीं-कहीं सफेद पत्थरकी चट्टानें बिछी हुई हैं, जो पलंग सी प्रतीत होती हैं। पत्ते रूपी पंखे धारण किए वृक्ष चारों दिशाओंमें खड़े हैं। चिलिका[1] और अंशुपा[2] तेरे लीला-सरोवर हैं, और कहीं-कहीं बीचमें पहाड़ोंने सुन्दर मण्डप-से डाल रखे हैं ॥२॥

---

१ **चिलिका**—पुरी जिलेमें स्थित एक झील।

२ **अंशुपा**—कटक जिलेकी एक झील।

प्रिय सहचरी प्रकृतिसुन्दरी होइ अति साबधान,
स्थाने-स्थाने तोहो पाइँ थोइअछि केते अळंकारमान।
प्रधानपाटरे सम्पादि थोइछि उज्ज्वळ रत्न सीमन्त,
लोकमुखे यार सुन्दरिमा कथा ब्यापिछि दिगदिगन्त।
केमन्त कौशळे गोधूळि मस्तके काचखण्डे देइ खचि,
तोलागि थोइछि 'गुम्दर्ह,' गर्भे दिब्य मथामणि सञ्चि।
गर्ब खर्ब हेब तारामानंकर दीप्तिकि चाहिंले यार,
समुद्र पुळिने थोइअछि देख तोलागि मुकुताहार।
तो हृदे बिराजे गड़जात देश उज्ज्वळ पदक हार,
नृपति खनिज-रतन खचिते प्रभा बिकाशुछि तार ॥३॥

तोहो रूपे मुग्ध होइ जगन्नाथ छाड़ि दवाराबती पुर,
काळिन्दजातट बिपिनबिहार सुख करि मनु दूर,
पूर्बाचळ चूळे दिनमणि प्राये बिजेकरि नीळाचळे
प्रेमे आलिंगन करूछन्ति तोते प्रकाण्ड बाहुयुगळे।
काशीधाम छाड़ि आसि त्रिलोचन रहिले एकाम्रबने,
तिनि लोचनकु तृप्त करूछन्ति तो भग्य रूप दर्शने।
से बिश्वपाबन बिश्वनाथंकर गमनकु अनुसरि
जान्हबी आसिले कइतब बेशे चित्रोत्पळा नाम धरि ॥४॥

पथे देखि तांकु 'समलाई' देबी भाबे आलिंगन कले,
समलाई कर लागि हृदहार छिड़ि पड़िगला तळे।
सेहिठारे भूमि होइला गभीर देबी खोजि खोजि हार,
खनित-बालुका-राशि पड़ि यहिं होइअछि स्तूपाकार।
ऐबे हीराकुद नामे अभिहित होइअछि सेहि स्थान,
केते हीरा तहुँ पाइ तो कुमरे होइछन्ति धनबान ॥५॥

तेरी प्रिय सखी प्रकृति सुन्दरीने बड़ी सावधानीसे तेरे लिए जगह-जगह कितने ही अलंकारोंको रखा है, प्रधानपाटमें उज्ज्वल रत्न सीमन्त सँजोकर रखा है, जिसकी सुन्दरता लोगोंके द्वारा चारों ओर फैली है। कौशलसे गोधूलीके ललाटपर काँचके टुकड़ेमें खचित कर, तेरे लिए 'गूमदर्ह' के गर्भमें माथामणि हिफाजतसे रखा है। समुद्रके तटपर तेरे लिए मुक्ता माला रखी हुई है, जिसकी कान्ति तारोंको भी लजाती है। देशीय राज्य तुम्हारे कण्ठहारके समान सुशोभित हैं, रत्नोंके समान राजाओंसे उसकी शोभा बढ़ रही है ।।३।।

तेरे सौन्दर्यसे मुग्ध हो श्रीजगन्नाथ द्वारकापुरी छोड़कर और कालिन्दी तटके वनमें विहार करनेके आनन्दको त्यागकर, पूर्व दिशामें सूर्यके समान नीलाचल धाममें विराजित हो, विशाल बाहु फैलाकर तुझे प्यारसे आलिंगन करते हैं। त्रिलोचन शिव काशी धाम छोड़कर तेरे एकाम्र वनमें रहते हैं। जहाँ तेरे सौन्दर्यसे उनकी तीनों आँखें प्रसन्नता प्राप्त करतीं हैं। इस विश्वके मंगलकारी शिवका अनुसरण कर जाह्नवी भी गुप्त वेषमें चित्रोत्पला नाम धारण कर आई हैं ।।४।।

राहमें 'समलाई देवी' ने उसे देखकर प्यारसे गले लगा लिया। देवीके हाथोंसे गलेकी मुक्तामाला टूट कर नीचे बिखर गई। वहाँ हारकी खोज करनेके कारण भूमि गम्भीर हो गई और खोदी हुई बालू जमकर पहाड़के समान हो गई। आजकल यह स्थान हीराकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँसे हीरा प्राप्तकर न जाने कितने लोग धनवान हुए हैं! ।।५।।

मने-मने केते मुँ बोइलि, धन्य-धन्य गो उत्कळ मात !
सर्व देबदेबी हेउछन्ति तोर बिशद्ध कोळरे जात ।
एणु बिज्ञजने बोलुथान्ति परा सर्ब तीर्थ घेनि हरि
पतितपाबन-रूपे रहिछन्ति नीळाचळे बिजे करि ।
एणु आर्य्य कबि कहियाइछन्ति "कळौ चित्रोत्पळा गंगा,"
श्वेत तरंगिणी गुपते होइछि मंजुळ श्यामतरंगा ।
सहसा दिशिला बिराट मूरति बिराजित सम्मुखरे,
राजराजेश्वरी देशे रथपद गदा पदम कम्बु करे ।।६।।

सुनीळ चिक्कण चरमलम्बित कुटिळ कुन्तळ कान्ति
जन्माउछि मने बीचिबिक्षोभित सरितपतिर भ्रान्ति ।
अभ्रलिट चारु रचित किरीट बिभ्राजित मस्तकरे,
किए न कहिब मुकुट गढ़िछि बिश्वकर्मा निज करे ।
किरीट शोभाकु शोभित करूछि कर्णभूषा मल्लीकढ़ि,
मल्लीकढ़ि तट चुम्बने कुन्तळ शोभाहिं याइछि बढ़ि ।
दक्ष करे बंग-भूषण तैलंगी-भूषण दक्षिणेतरे,
चरणयुगळे लरिया भूषण शोभा सम्पादन करे ।।७।।

तरंगिणीगण नृत्य आरम्भिले मनोहर बेश धरि
बिबिध भूषणे बिभूषित होइ कुसुमे साजि कबरी ।
हीरकमण्डित-बेणी चित्रोत्पळा तहिं थिला अग्रगण्या,
अमरभुबने नर्त्तकीमण्डळे उर्बशी येसन धन्या ।
ता पछकु थिला ब्राह्मणी सुबर्ण-कुसुमरे मण्डि चूळ,
नृत्यभोळे गणु न थिला चुळरु खसुथिला स्वर्ण फूल ।
सिंहभूमि राज-उद्यान कुसुम-रचित सुरम्य हार
उरे मण्डि 'देब' कोइलि सहित संगे नाचुथिला तार ।।८।।

मेरे मनने वारम्वार कहा है—हे उत्कल-जननी। तू धन्य है। तेरी ही पवित्र गोदमें सब देवी देवताओंने जन्म लिया है, इसीलिए ज्ञानी लोग कहते है कि तमाम तीर्थोको साथ लेकर पतित पावन रूप धारण करके हरि नीलाचलमें विराजमान हैं। इसलिए आर्य कविने कहा है 'कलियुगमें चित्रोत्पला ही गंगा है।' श्वेत तरंगिणीने अपनी मञ्जुल श्याम तरंगको गुप्त रखा है। सहसा एक विराट मूर्ति सम्मुख आई, जो चारों धाम (भुवनेश्वर, याजपुर, कोणार्क और पुरी) में व्याप्त है ।।६।।

इसके लम्बे वालोंका सौन्दर्य सागरका भ्रम कराता है। मस्तकपर गगनचुम्बी मुकुट सुशोभित है। इसको देखकर कौन नहीं कहेगा कि विश्वकर्माने इसे स्वयं अपने हाथोंसे निर्माण किया है। मोगरेकी कलियाँ किरीटके सौन्दर्यको दुगुना कर देती हैं, मोगरेकी कलीसे लगकर चूर्ण कुन्तल सौन्दर्यको और वढ़ा रहा है। दक्षिणमें बंगालका अलंकार सुशोभित है और वाँई ओर तैलंगका लरिया चरणोंकी शोभा बढ़ा रहा है।।७।।

तरंगें मनोहर वेश धारणकर तथा भिन्न-भिन्न अलंकारोंसे सुसज्जित हो फूलोंकी कवरी सजाकर नाचने लगीं। सुरपुरमें उर्वशीके समान हीरोंके आभूषणोंसे कवरी सजाई हुई चित्रोत्पला नदियोंमें श्रेष्ठ है। उसके पीछे सोनेके फूलोंसे केश-राशिको सजाए हुए ब्राह्मणी थी। वह नृत्यमें इस प्रकार मग्न थी कि गिरते हुए फूलोंपर उसका ध्यान नहीं था। सिंहभूमिके राजोद्यानकी पुष्पमाला गलेमें पहनकर 'देव' और 'कोइलि' भी उसके साथ नाचती थीं।।८।।

गाउथिले मधु-स्वरे मधुमय बेदव्यास गीताबळी,
कोइलि मस्तके ब्राह्मणी शिखरी देउथिले पुष्पाञ्जळि ।
सिंह भूपंकर स्वर्ण-जरिमय शुभ्र कीर्त्तिध्वज धरि
स्वर्णमयी स्वर्ण रेखा आसिथिला घेनि बहु सहचरी ।
बैतरणी रम्य कानन कुसुम करिथिला आभरण,
बास लोभे ताकु भृगरूपे बेढ़ि थिले देबदेबीगण ।
भार्गबी बिरूपा दया रत्नचिरा आदि तरंगिणीश्रेणी
चम्पा छुरिअना पुन्नाग बिबिध पुष्पे मण्डिथिले बेणी ।।९।।

वे वेदव्यासकी गीतावलीको मधुर स्वरसे गा रहीं थीं और 'ब्राह्मणी' कोयलके मस्तक पर फूलोंकी अञ्जलि दे रही थी। सिंह महाराजकी कीर्ति-पताका धारण कर तथा सखिओंको साथ लेकर स्वर्णमयी स्वर्णरेखा आई थी। वैतरणी सुन्दर फूलोंके आभरण पहनकर आई। इसलिए सुगन्धके लोभसे सुरगण उसे भँवरके समान घेरे हुए थे। भार्गवी, विरूपा, दया, रत्नचिरा आदि नदियोंने चम्पक, छुरिअना और पुन्नागकी मालासे कबरी सजाई थी ।।९।।

---

१०. चन्द्र-रजनी

पूर्णिमा प्रदोषे पूर्णचन्द्र आगमन
चाहिँ तरतरे सज रजनी रमणी ।
ललाटे घेनिला शुक्र उज्वळ रतन,
कर्णयुगे ध्रुबागस्त्य मनोहर मणि ।
रंगाधरे मन्दहास करि परकाश
देखाइला सुबिमळ प्रसन्न बदन;
हृष्ट पुष्ट कळेबरे उज्ज्वळि आकाश,
चन्द्रहिँ कोमळ करे कले आलिंगन ।
मधुरे मधूर मिशि हेला मधुमय,
ए योग मिळइ हेले सौभाग्य समय ।।१।।

से शोभारे उल्लसिला पाषाण हृदय,
जळाशये उल्लसिला कुमुद कानन;
धराधरे उल्लसिला ओषधिनिचय,
गगने उल्लासमय चकोर गायन ।
जनपदे पुरे-पुरे प्रदीप उल्लास,
उल्लसित देबाळय शंखघण्टा स्वने;
हृदये-हृदये महाउल्लास बिकाश,
उल्लासे खेळन्ति ठाबे-ठाबे शिशुगणे ।
उल्लास नेइछि करि बिश्व अधिकार,
प्रबळर आधिपत्य सर्बतः स्वीकार ।।२।।

१०. चन्द्र-रजनी

पुर्णिमाकी रातमें पूर्णचन्द्रके आगमनको देखकर रजनी रूपी नारीने शीघ्र ही अपना शृंगार कर लिया। ललाटमें शुक्र रूपी उज्ज्वल मणि और कानोंमें ध्रुव और अगस्त्य दोनोंको पहन लिया। इस तरह लाल ओठोंमें मन्द मुस्कान फैलाकर प्रसन्न चित होकर प्रकाशित हुई। और पुष्ठ शरीरसे आकाशको उदभासित कर चन्द्रमाने कोमल हाथोंसे उसका आलिंगन किया। मधुरके साथ मधुर द्रव्य मिलकर मधुमय बन गया। ऐसा संयोग सौभाग्यसे ही मिलता है ॥१॥

ऐसी शोभासे पत्थरका हृदय भी उल्लासित हो उठा। जलाशयोंमें कुमुदवन प्रस्फुटित हो गए। पृथ्वीपर लताएँ उल्लासित हो गईं। आकाशका उल्लास चकोरके गीतसे फैल गया। नगरमें और घर-घरमें प्रदीप्त उल्लासका प्रकाश छा गया। शंख और घण्टोंकी ध्वनिसे मन्दिरोंकी प्रसन्नता प्रगट होने लगी। प्रत्येक हृदयमें असीम उल्लासका प्रादुर्भाव होने लगा। जगह-जगह आनन्द-सागरमें गोते लगाते बालक-वृन्द क्रीड़ा-कौतुक करने लगे। सारे विश्वपर उल्लासका साम्राज्य छा गया है। बलवानका आधिपत्य सर्वत्र स्वीकार होता है ॥२॥

सप्तऋषि रजनीर मधुर मूरती
दरशन पाइँ चाहिँह बसिथान्ति पथ,
सादरे करन्ति आदय मंगळ आरती,
उदीची हस्तरे साजि प्रदीप सपत।
लाजरे लुचाइ मुख चाहिँ अरून्धति,
मन्द-मन्द हसि करूथान्ति उपहास;
रजनीकि बोलुथान्ति धन्यरे युबती,
स्वर्गीय मुनीन्द्रगण हेले तोर दास,
तु काळरूपिणी काळी मोहिलु जगत,
मानब, दानब, देब सर्ब तो भकत ॥३॥

['कबिता कल्लोळ' से]

सप्तऋषि (तारा गण) रात्रिकी सुन्दर मूर्तिका दर्शन करनेके लिए रास्ता देख रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उत्तर दिशामें रात्रिकी मंगल आरतीके लिए सात प्रदीप सजे हों। लज्जासे मुख छिपाए अरुन्धती मुस्कराती हुई, उपहास करती हुई कहती है–हे रजनी, तू बड़ी सौभाग्यशालिनी है। स्वर्गके देवतागण भी तेरे दास हैं। तूने काल रूपिणी कालीके समान संसारको बशमें कर लिया। मानव, दानव और देव––सभी तेरे भक्त और पुजारी हैं।।३।।

———————

११. अमृतमय

नब विकसित फुल गन्ध,
नब सरस कबिता छन्द,
बन बिहंग मधुर तान,
शिशु सरळ तरळ गान,
नब प्रफुल्ल कमळ कानन
नब सुकुमार शिशु आनन,
अमृतमय अमृतरय भसाइ नेउछि जीबन ।।१।।
धीर चळित शीतळ बात,
चिर लळित कुमुदनाथ,
क्षीर-धबळ चन्द्रिकाजाल,
नीरदानदक्ष घनमाळ,
मृदु मधुर आलोक उषार,
नबपल्लबपतित तुषार ।
अमृतमय अमृतरय मज्जाइ देउछि संसार ।।२।।
मिटिमिटि जकजक तारा,
टपटप जळधर धारा,
तम नाशने धाबित धृष्णि,
तममुक्त अबनी हृष्टि,
गिरिगरभ प्रसूत निर्झर,
दूर लम्फित प्रपात झर्झर,
अमृतमय अमृतरय जीबन करूछि जर्ज्जर ।।३।।
मुँ त अमृत सागर बिन्दु,
नभे उठिथिलि तेजि सिन्धु,
खसि मिशिछि अमृत धारे,
गति करूछि से अकूपारे,
पथे शुखिगले पाप तापरे
होइ शिशिर खसिबि ता परे,
अमृतमय अमृतरय सहित मिशिबि सागरे ।।४।।

११. अमृतमय

नव प्रस्फुटित फूलोंकी सुगन्ध, नवीन और सरस कविताका छन्द, वन विहगोंके मधुर स्वर, कोमल और सरल शिशुओंका सुरीला गान, नव प्रस्फुटित कमलका वन और सुकुमार शिशुओंके मुख, अमृतमय अमृतधारासे जीवनको बहा लेते हैं ।।१।।

मन्द-मन्द बहनेवाला शीतल पवन, सदा सुन्दर चन्द्रमा, दूध-सी सफेद ज्योत्स्ना, नीर-दानमें कुशल मेघमाला, उषाका कोमल और मधुर आलोक और नए कोमल पत्तोंपर गिरी हुई शबनमकी बूँदे, अमृतमय अमृतस्रोतमें विश्वको डुबा देती हैं ।।२।।

टिमटिमाते और जगमगाते हुए तारे, टपाटप गिरती हुई मेघमालाकी धारा, एवं तमका नाश करनेके लिए तुम्हारी शक्ति दौड़ती है । अन्धकारसे मुक्त प्रसन्न अवनि, पर्वतोंसे आते हुए झरने, दूर तक उछलनेवाले प्रपात, अमृतमय अमृतके स्रोतसे जीवनको जर्जरित कर रहे हैं ।।३।।

मैं तो अमृत सागरकी एक बूँद हूँ, सिन्धु छोड़कर मैं आकाश पर उठी थी, वहाँसे गिरकर अमृतकी धारामें मिली हुई हूँ। उस सागरकी ओर गति शील हो रही हूँ, राहमें यदि पापके तापसे तापित हो कर सूख जाऊँगी, तो उस समय भी शबनमकी बूंद होकर ही गिरूँगी। अमृतमय अमृतधाराके साथ सागरमें मिलकर एकाकार हो जाऊँगी ।।४।

१२. मधुमय

बिश्व देख मधुमय रे जीबन ! बिश्व देख मधुमय !!
मधुर झरण करिब हरण
तो पाप मरण भयरे जीबन घोषा।
जननीर स्नेह जायार प्रणय
बुध बन्धु सदाळाप,
जनक आदर एक-एक झर
तड़ि देउछन्ति तापरे जीबन ।।१।।

नब-नब कर्म नब-नब मर्म
नब-नब ज्ञान पथ
नबीन आलोके देखन्ति ए लोके
मधु झर शत-शत रे जीबन !
मधुमय बने मधुमय स्वने
गाइ मधुमय गीति
बिहंगम गण पुरान्ति श्रबण
मधु ढाळि निति-निति रे जीबन ! ।।२।।

दिने दिनपति रात्रे ऋक्षतति
सहित कुमुद बन्धु,
बिचरि गगने अखिळ भुबने
बितरन्ति ज्योति मधु रे जीबन !
मही महीधरे सरित सागरे
सरे बने उपबने
देख फुलकुळ पल्लब कल्लोळ
मधु माखिछन्ति घनेरे जीबन ।।३।।

१२. मधुमय

रे जीवन, देख ! विश्व मधुमय है। मधुर झरनेकी धारा तेरा पाप और मृत्युका भय दूर कर देगी। जननीका प्यार, पत्नीका प्रेम, ज्ञानी मित्रोंका आलाप और पिताका स्नेह एक-एक झरनेके समान जीवनके एक-एक तापका विनाश कर रहा है ।।१।।

नया कर्म नया मर्म, और नया ज्ञान-मार्ग, नवीन आलोकमें इस संसारको सैकड़ों मधुर झरने देता है। मधुमय वनमें, मधुर स्वरसे मधुर संगीत गाकर पक्षीगण रोज-रोज मधु वर्षा करके—श्रुतिको भर देते हैं ।।२।।

दिनको सूर्य, रातको तारोंके साथ कुमुद-बन्धु चन्द्रमा आकाश मार्गमें विचरण करते हुए सारे विश्वको ज्योति रूपी अमृत दान करते हैं। पृथ्वीमें, पहाड़में, झरनेमें, सागरमें, तालाबमें, वनमें और उद्यानमें पुष्प वृन्द आनन्दित हो घने पत्तोंसे क्रीड़ा कर रहे हैं, जिसे देख जीवन रसमय हो जाता है ।।३।।

बिश्वनाथङ्कर करूणा कन्दर
मधुझर जन्म स्थळ
चाहिँ झर प्रति उच्चे कले गति
पाइबु करूणाचळ रे जीबन !
हेलेहँ तु स्थान करूणानिधान राज्यरे करिछु बास
बढ़ाइले कर ताङ्क श्रीपयर
लाभे न हेबु निराश रे जीबन !
सर्पदष्ट जन मुखरे लबण देले बोलिथाए माटि
ज्ञानभ्रष्टे मधु न लागिले स्वादु
ज्ञान गद पिअ बाटि रे जीबन !।।४।।

———————

विश्वनाथकी हृदय रूपी गुफा ही मधुर झरनेका जन्म-स्थान है। इस झरनेको देख कर यदि ऊपर देखोगे तो विश्व-वन्द्यका दर्शनकर पाओगे। तेरे छोटे होने पर भी, करुणामयके राज्यमें तेरा निवास है। हे जीवन! हाथ बढ़ाओगे तो चरण पानेमें निराश नहीं होगे। साँप काटे हुए आदमीके मुखमें नमक देने पर वह उसे मिट्टी बताता है। इसी प्रकार यदि मूर्खको यह ज्ञान अमृत तुल्य न लगे, तो हे जीवन! उसे ज्ञान रूपी बूटी घोल कर पिलाओ ।।४।।

---

१३. ताकु मध्य बोलि थान्ति धर्म अबतार !

● ● ●

मन यार ब्यस्त सदा परस्व हरणे,
धन यार बिदळित गणिका चरणे,
जीबन या लक्ष लक्ष लोकङ्कर भार,
ताकुमध्य बोलिथान्ति धर्म अबतार ।।१।।

बिदया यार मोड़ थाए धर्मनीति मुण्ड,
बुद्धि यार करूयाए शत सत्य गुण्ड,
धने क्रीत हेउथाए याहार बिचार,
ताकु मध्य बोलिथान्ति धर्म अबतार ।।२।।

सुबर्ण हरण करि ताम्ब्र करे दान,
धने करिथाए प्रभु सन्तोष बिधान,
ढाङ्किबाकु दोष दिए नाना उपहार,
ताकु मध्य बोलिथान्ति धर्म अबतार ।।३।।

भ्रमण खरच पाइँ पाइथाए भता,
खाइथाए मोड़ि ऐणे दरिद्रङ्क मथा,
करूथाए क्षमतार अपब्यबहार,
ताकु मध्य बोलिथान्ति धर्म अबतार ।।४।।

बहिर्गत होइथाए घर, शून्य करे,
शगड़-शगड़ द्रब्य आणि घरे भरे,
सेहि द्रब्यमान पुणि देखाए बजार,
ताकु मध्य बोलिथान्ति धर्म अबतार ।।५।।

———————

१३. उसे भी धर्मावतार कहा जाता है !

● ● ●

जिसका मन परस्व अपहरणमें हमेशा व्यस्त रहता है, जिसका धन गणिकाके चरणसे कुचला जाता है, जिसका जीवन लाखों लोगोंके भारसे दबा रहता है, उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं ! ।।१।।

जिसकी विद्या धर्मके नियमोंका सिर मूड़ती रहती है, जिसकी बुद्धि सैकड़ों सत्योंको चूर्ण करती रहती है, जिसके विचार धनसे मोल लिए जाते हैं, उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं ! ।।२।।

जो स्वर्ण हरण कर ताँबा दान देता है, जो धनसे अपने प्रभुको सन्तुष्ट करता है, अपने दोष छिपानेके लिए नाना भेंट देता है, उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं ! ।।३।।

भ्रमण-खर्चके लिए जो भत्ता प्राप्त होता है, उसे हड़प जानेवाला दरिद्रोंका गला मरोड़ कर रक्त चूसता है क्षमताको जो बरबाद करता रहता है, उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं ! ।।४।।

खाली हाथोंसे घरसे निकला हुआ, गाड़ियोंसे धन लाकर घर भर ले, फिर बाजारमें उस धनका प्रदर्शन करे; उसे भी धर्मका अवतार कहते हैं ! ।।५।।

———————

१४. भारती-भावना

गोलक-मण्डळे नाथे लक्ष करि
कहन्ति भारती-किशोरी,
भारत-मण्डळे याहा कल नाथ
मनुँ हेउनाहिँ पाशोरि;
गोपेन्द्र, छळे जाति कुळ नाशिल,
याहा थिला आम्भ-निजत्व तहिँरे
निज प्रभुता प्रकाशिल ।।१।।

बिक्रमें हराइ बिकर्मे डराइ
बशीभूत कल सकळे,
बासर यामिनी यापि न पारिलु
तुम्म पदसेबा न कले;
तहिँरे, उदारपण देखाइल,
धन मन पण गर्भे भेण्टि करि
पदसेबन शिखाइल ।।२।।

तुम्भ हासे हास, तुम्भ भाषे भाष
रहिला तुम्भ पदे मति,
तुम्भ कथा बिना जगते आम्भर
रहिला नाहिँ अन्य गति;
गोपेन्द्र, तुम्भरि इंगिते चालिलुँ,
तुम्भ मदे माति निज गउरब
निजर चरणे दळिलुँ ।।३।।

१४. भारती-भावना

[यह पूरी कविता श्लिष्ट है। इसमें एक ओर जहाँ भगवान कृष्णकी स्तुति है, वहीं दूसरी ओर अँग्रेजोंके प्रति भारतीय जनताका आक्रोश भी व्यक्त है। पाठकोंकी सुविधाके लिए श्लिष्ट शब्दोंका दूसरा अर्थ प्रत्येक छन्दके अनुवादके नीचे ही दिया गया है।]

गोलोक धाममें प्रभुको लक्ष्य कर भारतकी ललनाएँ कहती हैं—हे नाथ, भारत भूमिमें तुमने जो लीलाएँ कीं, वे कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। हे गोपेन्द्र, छल करके तुमने हमारी जाति और कुल नष्ट किया है। जो भी हमारा अपनापन है, उस पर तुमने अपनी प्रभुताका प्रकाश किया है ।।१।।

गोलक मण्डळे—द्वीपान्तरमें अँग्रेज। **गोपेन्द्र**—श्वेत-द्वीपके अधिवासी, अँग्रेज।

बलसे पराजित कर, कुकर्मसे भय दिखा कर, सबको अपने वशमें कर लिया है। तुम्हारी चरण-सेवा किए बिना हमें दिन-रात चैन नहीं है। उसपर फिर तुमने उदारता की है, हमारा धन-मन उदरस्थ कर तुमने पद-सेवा करना सिखलाया है ।।२।।

गर्भे-मेण्टि करि—गवर्नमेण्टी, सरकारी बनाकर।

तुम्हारी हँसीमें हँसी है और तुम्हारी बातोंमें बात। इस प्रकार तुम्हारे चरणोंमें मन रमा रहा है। तुम्हारी चर्चा, सेवाके बिना संसारमें हमारी दूसरी गति नहीं है। हे गोपेन्द्र, तुम्हारे निर्देशसे ही हम चल रही हैं। तुम्हारे मदसे मतवाली होकर हमने अपने गौरवको अपने ही पैरोंसे कुचल दिया है ।।३।।

तुम्भ मदे—तुम्हारे मदमें।

अशने बसने शयने स्वपने
तुम्भ पदे मन रहिला,
मदन देखिले क्षणिक बिरह
जीबनत आम्भ दहिला;
गोपेन्द्र, जाण तुम्भे सबु हुन्दर,
तुम्भर आसन बासन काशन
समस्त दिशिला सुन्दर ।।४।।

तुम्भर कथारे मधुर रहिला
करि नेल हृद कळणा,
तुम्भ बदनरू कथा न स्फुरिले
सबु याक हेला अलणा;
गोपेन्द्र, निज बास बिष मणिलुँ,
मन्त्ररे मोहिल तन्त्रर तुम्भर
महत कउड़ि गणिलुँ ।।५।।

आम्भ क्षीर सर लबणीरे पुष्ट
बळकु तुम्भर अनाइ,
भय लभि सिना जारमणि बीरे
करि न पारिले लढ़ाइ;
गोपेन्द्र, एकथा कहिथिल याइँ,
जय गर्बे माति केउँ कथा कल
पूर्ब प्रतिज्ञा अनुयायी ।।६।।

गान्धिनीज–काण्ड घटाइला दिनु
स्नेह गण्ठि हेला शिथिळ,
तहुँ जणागला किस हेल तुम्भे
तहिँ पूर्बे अबा कि थिल,
पान्चाळे, परिचय हेला याहार,
याहा लागि हेला सकळ कळह
मान बढ़ाइल ताहार ।।७।।

भोजनमें, परिधानमें, शयनमें और स्वप्नमें भी तुम्हारे चरणोंमें ही मन लगा रहा। मदनको क्षण मात्र भी देखने पर विरह हमारे जीवनको जलाने लगा। हे गोपेन्द्र! तुम प्रपञ्चको जानते हो। तुम्हारा उठना, बैठना, बातचीत, व्यवहार सभी सुन्दर लगते हैं।।४।।

मद-न देखिले—शराब न होनेसे।

तुम्हारी वाणीमें मधुरता है। तुमने हृदयको नाप लिया है। तुम्हारी सारी बातें न सुनने तक सभी अलोना (फीका) लगता है। अपना वास भी हमे जहर-सा ही प्रतीत होता है। तुमने मन्त्रसे मोहित कर लिया है। तुम्हारी मुरलीके लिए हमने अपनी महत्ता खोई।।५।।

बास—वसन। **तन्त्रे तुम्भर**—मिलके कपड़ेके लिए।

हमारे दूध, मक्खन और मलाईसे परिपुष्ट तुम्हारी शक्तिको देखकर बलवान वीर पुरुष भी तुमसे युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे गोपेन्द्र! यह कैसी बात कही! विजयमें उन्मत्त होकर अब तुम क्या कहने लगे हो, तुम तो अपनी प्रतिज्ञाको निभानेवाले हो।।६।।

जारमणि बीरे—जमीनके वीर। '**जय गर्बे माति.....प्रतिज्ञा अनुयायी**'—(यह) भारतको स्वाधीनता देनेकी प्रतिश्रुति भंग करनेको लक्ष्य कर कहा गया है।

जिस दिन अक्रूरने यह सब किया, उसी दिनसे स्नेह-गाँठ ढीली पड़ गई। उसीसे मालूम हो गया कि पूर्वमें तुम क्या हो गए हो। जिस पाञ्चालीके लिए यह सारी कलह हुई, उसका मान तुमने बढ़ाया, इसीसे तुम्हारा परिचय मिल गया।।७।।

गान्धिनीज-काण्ड=गान्धी निज काण्ड—(यहाँ) महात्मा गान्धीका सत्याग्रह आन्दोलन। **पाञ्चाळे**—अमृतसरमें, गोलीकाण्डके समय जलियानावाला बाग।

गान्धिनीज कष्ट गणना न करि
बन्दिपुर कले गमन,
कान न पातिल दूरे थाइ कलुँ
येते हाहाकार क्रन्दन;
जगते, कीरतिर बाना उड़िला,
पार निआँ मेण्टि कउशळ बळे
उग्रसेनानन्द बढ़िला ।।८।।

परे जणागला तुम्भ आम्भ भेद
तुम्भे दवीपान्तरनिबासी,
बाल्य जीबनरे आम्भर धनरे
बढ़िबा पाइँ थिल आसि;
गोपेन्द्र, तुम्भे हेल बिश्वबिख्यात
आम्भ संगे एक बेभारे चळिले
हेउछि एबे लाजजात ।।९।।

डाकित न शिलुँ तुम्भ घरे याइ
आसिथिल निज लाभरे,
सरळ हृदय मणि सिना घरे
रखिलु अति स्नेहादरे;
गोपेन्द्र, कहिब कल उपकार
याहा करिअछ निज स्वार्थ पाइँ
न थिला आम्भ दरकार ।।१०।।

तुम्भर आगरे तुम्भर पराये
मुषळमान थिले आसि,
कोपन स्वभाब हेले हें आम्भर
समस्ते थिले नाहिँ ग्रासि;
करिसे, न थिले बसन हरण
दुरपद-सुता चिन्तिकार पाश
करि न थिले से प्रेरण ।।११।।

अक्रूरने अपने कष्टकी परवाह न की और कृष्णकी नगरीकी ओर प्रस्थान किया। हम लोगोंने बहुत हाहाकार किया। कितना रुदन था! किन्तु तुमने कान तक नहीं दिया। संसारमें तुम्हारी कीर्त्ति-पताका उड़ी। तुम्हारे कौशलसे सब विपत्ति दूर हुई और उग्रसेनका आनन्द बढ़ा ॥८॥

गान्धिनीज कष्ट = गान्धी-निज-कष्ट—महात्मा गाँधीका अपना—कष्ट। **बन्दिपुर**—कारागार। **पार निआँ मेण्टि कउशळ बळे**—पार्लियामेण्टकी सहायतासे। **उग्रसेनानन्द**—प्रचण्ड सेनाकी प्रसन्नता।

बादमें तुम्हारे और हमारे बीचके भेदका कारण मालूम हुआ कि तुम द्वारिकाके ही निवासी हो। बाल्य कालमें हमारी सम्पत्तिसे बढ़नेके लिए आए थे। हे गोपेन्द्र, तुम विश्व विख्यात हुए। इतने दिन तक हमारे साथ चले, आज हमारे साथ चलनेमें लाज लगती है ॥९॥

दवीपान्तर-निबासी—दूर देश (ब्रिटिश द्वीप) में रहनेवाले।

हम तुमको अपने घर बुलानेके लिए नहीं गई थीं। तुम्हीं अपने स्वार्थके लिए आए थे। तुमको अति सरल हृदयवाला जानकर ही तो स्नेह-आदरसे हमने तुम्हें अपने घरमें रखा था। हे गोपेन्द्र, तुम कहोगे कि तुमने हमारा उपकार किया है। किन्तु तुमने जो भी किया हो, अपने स्वार्थके लिए ही, हमें उसकी जरूरत नहीं थी ॥१०॥

तुम्हारे पहले तुम्हारे ही समान बलराम आए। वे क्रोधी थे, लेकिन उन्होंने हमारा कुछ बिगाड़ा नहीं था। उन्होंने वस्त्र-हरण नहीं किया था। और प्रार्थना करनेवाली द्रौपदीके पास वस्त्र नहीं भेजा था ॥११॥

मुषळमान—मुसलमान। **बसन हरण**—यहाँ भारतीय कार्पास-शिल्पका नाश। **'दुरपदसुता चिन्ति कार पाश करि न थिले से प्रेरण'**—दूर पद = दूर देश अर्थात् इंगलैंडके सुता = सूतकी चिन्ताकर कार पाश = कारपास = कार्पास नहीं भेजा था।

आम्भ कर धरि चालि-चालि क्रमे
तुम्भ पराक्रम बढ़िला,
तुम्भ बिना आम्भे चळि न पारिबु
कथा शुणिबाकु पड़िला;
जीबन, जीबिकी तुम्भरि हातरे,
देइ तुम्भ पद आशारे रहिलुँ
कान्दि मरूअछू कातरे ।।१२।।

षण्ढ़ मारिबार धरम तुम्भर
बिषकूट कर आहार,
तुम्भ पुतनारी–महिमा करइ
नारी गउरब प्रसार;
तुम्भर, गर्भ कळिबार दुष्कर,
बन्धु बोलि याकु सेनाबळ देल
प्राण न रहिला तांकर ।।१३।।

कृष्णा कृष्ण घेनि भारत बिप्लब
उपुजिला कपट पाशे,
यहिँ कृष्ण, तहिँ बिजय निश्चय
रहिगला लोक बिश्वासे;
बोइले, दुःशासन मूळ कारण,
बिधाता बिधान लंघनीय नुहेँ
केमन्ते हुअन्ता बारण ? ।।१४।।

बिराट बिभब सुखे भोगकले
कौशळे पाण्डुर नन्दने,
शेषे अधिकारी निजे अपसरि
रहिले चरण बन्दने;
उत्तर, मिळिला याहा शेषकाळे,
पूर्ब छळ बळ होइला बिदित
कर देबा हेला कपाळे ।।१५।।

हमारे हाथ पकड़ धीरे-धीरे चलनेके ही कारण तुम्हारी शक्ति बढ़ी तुम्हारे बिना हम लोग जी नहीं सकेंगी, अन्तमें यही बात सुननेको मिली। जीवन और जीविका तुम्हारे हाथ दे एवं तुम्हारे चरणोंकी आशा रखकर रो-रो कर मर रही हैं ।।१२।।

कर धरि—हस्त धारण कर, कर (टैक्स) की सहायतासे।

बैल मारना तुम्हारा धर्म है और विषपान करना तुम्हारा काम है। पूतनाकी महिमा बढ़ाई, जो नारी-गौरवका प्रसार करती है। तुम्हारा अन्त पाना बड़ा दुर्गम है। बन्धु मानकर जिसको सैन्य बल दिया, उसीके प्राण गए ।।१३।।

'**षण्ढ़ मारिबार धरम तुम्भर**'—गो हत्या तुम्हारा धर्म है। '**बिषकूट कर आहार**'—तुम बिस्कुट खाते हो। '**पुतनारी-महिमा करइ नारी गउरब प्रसार**'—तुम्हारी पवित्र नारी-महिमा (नारीकी पवित्रता) नारी-गौरवको बढ़ाती है।

कृष्ण और कृष्णाको लेकर कपटी पासोंसे भारतमें विप्लव पैदा हुआ। जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ विजय है—यह विश्वास लोगोंमें छा गया। कहते है दुःशासनही उसकी जड़ था, परन्तु विधिका विधान अलंघनीय है। यह कैसे दूर किया जा सकता है? ।।१४।।

कृष्णा कृष्ण घेनि—भारतीय नर-नारीको लेकर। **कपटपाशे**—छल करके। **यहिँ कृष्ण**—जहाँ भारतीय होते है। **दुःशासन**—खराब शासन-व्यवस्था।

पाण्डव पुत्रोंने कौसलसे विराट सुख-वैभव भोगा। शेषमें स्वयं हटकर सेवामें नियुक्त रहे। अन्तमें जो उत्तर मिला, उससे पूर्ण कौसल मालूम हो गया और केवल सिरपर हाथ धरना ही रह गया ।।१५।।

विराट विभव—विराट देशका विपुल विभव।
पाण्डुर नन्दने—पाण्डु वर्णवाले अँग्रेज। '**कर देबा हेला कपाळे**'—कर (टैक्स) देना निश्चित हुआ, मस्तकपर हाथ धरकर हाय-हाय करना।

बड़-बड़ बीरे कुरू अन्न खाइ
पाण्डबङ्क जय बांछिले,
तुम्भ अपमाने दुःख बहि मने
दुर्य्योधन दोष बाछिले;
तुम्भरे, भकति थाए उभङ्कर;
तुम्भर सदिच्छा अपाण्डब पक्षे
न हेला केबे शुभंकर ।।१६।।

न दोषि अक्षरे अर्थर लक्षरे
उचित स-कार भरिब,
लघु गुरू ह्रस्व दीर्घ या अवश्य
हेबा योग्य ताहा करिब;
पाठक, सेहि भार तुम्भ हातरे,
हेब बिचारक बोलि बिरचक
जणाउछि निति माथरे ।१७।।

———————

बड़े-बड़े वीर कौरवोंका अन्न खाकर पाण्डवोंकी विजय-कामना करने लगे। दुर्योधनसे तुमको अपमान मिला, इससे दुखी हो कर दुर्योधनको दोषी माना गया। दोनों दल तुम्हारी भक्ति करते थे। तुम्हारी कृपाकी दृष्टि कौरवोंके पक्षमें कभी नहीं हुई ।।१६।।

'**कुरू अन्न खाइ**'--भारतीय अन्न खाकर (भारतीय होते हुए भी)। '**पाण्डबङ्क जय बांह्दिले**'--अँग्रेजोंकी विजय-कामना की। '**तुम्भ अपमाने दुःख बहि मने दुर्योधन दोष बाछिले**'--तुम्हारी पराजयसे दुःखी होकर 'दुर्योधन'-(जिसके साथ युद्ध करना दुस्सह होता है।) अर्थात् भारतीय वीरोंका दोष निकालने लगे। **अपाण्डब**--भारतीय।

अक्षरको दोषी न मान ठीक अर्थके लिए जहाँ जिस स-कारकी जरूरत हो, व्यवहार करना। लघु, गुरु, ह्रस्व, दीर्घ--जहाँ जिसकी जरूरत हो, वहाँ उसका व्यवहार करना। हे पाठक वर्ग! यह भार तुम पर है। तुम इसके विचारक हो, इसलिए लेखक नत मस्तक हो कहता है ।।१७।।